Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यजुर्वेदीय-रुद्राष्टाध्यायी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२७४

यजुर्वेदीय-रुद्राष्टाध्यायी

'रुद्रप्रिया' भाषाव्याख्यासंवलिता

व्याख्याकारः—

विद्याभास्कर-मन्त्रमनीषी

पं० श्रीसरयूप्रसादशास्त्री 'द्विजेन्द्र' (गार्ग्यमुनि)

काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्याचार्य

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९६८

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.
प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, सं० २०२५ वि०

मूल्य : २–५०

© The Chowkhamba Sanskrit Series Office
Gopal Mandir Lane,
P. O. Chowkhamba, Post Box 8,
Varanasi–1 (India)
1968
Phone : 3145

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी–१
फोन : ३०७६

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय-प्रवेश

प्राक्कथन	...	...	
वैदिक वर्णोच्चारण	...	...	
रुद्रध्यानम्	...	...	
व्याख्याकारकृतमङ्गलम्	...	...	
रुद्राष्टाध्यायी	...	...	
प्रथमोऽध्यायः	...	...	१
द्वितीयोऽध्यायः	...	...	७
तृतीयोऽध्यायः	...	...	१६
चतुर्थोऽध्यायः	...	...	२२
पंचमोऽध्यायः	...	...	२८
षष्ठोऽध्यायः	...	...	५१
सप्तमोऽध्यायः	...	...	५५
अष्टमोऽध्यायः	...	...	५८
परिशिष्टाध्याये शान्तिपाठः	...	...	७१
स्वस्तिमन्त्रपाठः	...	...	७९
रुद्राभिषेकमाहात्म्यम्	...	...	८४

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राक्कथन

वेदमूलं जगत्सर्वं प्राणमूलात्मकं तथा।
तस्माद्वेदार्थ-विज्ञानं ज्ञातव्यं सर्वथा बुधैः॥

समस्त जगत् में अनादिकाल से वेद की अपरम्पार महिमा परम्परया चली आती है। यह अपौरुषेय वेद अक्षय ज्ञान का भण्डार है–ऐसा प्रायः सभी जानते एवं मानते हैं। क्योंकि 'वेद' सर्वान्तर्यामी परमात्मा का साक्षात्स्वरूप ही हैं। श्रुतिसिद्ध स्मृतियाँ, शास्त्र-पुराण ये सभी वेद-पथ-प्रदर्शक एवं वैदिक सिद्धान्तों को लौकिक ढंग से सर्वसाधारण के समझने के लिये ही रचे गये हैं। उपनिषद् तथा ब्राह्मणग्रन्थ तो वेद-विद्या भगवती 'मूलप्रकृति' के उद्बोधक होते हुए साक्षात् स्वयम्भू भगवान् रुद्रनारायण के ही परिपोषक हैं।

पराशरस्मृति में "वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुमः" कहते हुए 'रुद्रनारायण' की ओर ही संकेत है। जिज्ञासु पाठकों को यह भी स्मरण रखना चाहिये कि रुद्रनारायण, विष्णुनारायण किंवा ब्रह्मनारायण में अभेद-सम्बन्ध है; क्योंकि वेद परमात्मा का निःश्वास कहा गया है। देखिये शतपथ-ब्राह्मण में लिखा है :—

"अरे मैत्रेयि! अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः।" अर्थात् जब स्वयम्भू नारायण स्वयं अनादि एवं अपौरुषेय हैं—जो अनन्त कल्प-कल्पान्तरों में विद्यमान रहते आये हैं—तब निःसन्देह उस नित्य प्रभु का निःश्वास भी नित्य एवं अपौरुषेय स्वतः सिद्ध हुआ। अतः वेदत्रयी के अपौरुषेयत्व में शङ्का करना निराधार एवं निर्मूल है।

वेद, देव दानव एवं मानव धर्म का मूल ग्रन्थ है; क्योंकि प्रकृति-लक्षण तथा विकृति-लक्षण धर्म वेद में निहित हैं। ऐसी परिस्थिति में वेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन त्रैवर्णिक मानव के लिये परम आवश्यक है। विशेषतः वेदतत्त्व एवं मन्त्रार्थ-ज्ञान भी सापेक्ष्य एवं अनिवार्य है। वर्तमान समय श्रुति-स्मृति में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनास्था का जो भ्रम दृष्टिगोचर होरहा है, उसका एकमात्र कारण है—ऋचाओं, मंत्रों एवं श्लोकों (सूत्रों) का मानवी भाषा में अर्थाभाव।

× × × ×

भारतवर्ष में वर्ण एवं आश्रम का विधान वेद-तत्त्व के रक्षार्थ ही किया गया प्रतीत होता है; क्योंकि वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा से ही वेद सुरक्षित रह सकता है तथा वेद-रक्षण से ही वर्णाश्रम की सुव्यवस्था कायम रह सकती है। इन दोनों की सुरक्षा के निमित्त द्वापरान्त में महर्षि वेदव्यास जी ने वेद-विभाजन-पूर्वक महाभारत एवं ब्राह्म ··आदि पुराणों की रचना करके वैदिक मूलतत्त्वों का दृष्टान्तद्वारा संरक्षण किया। तत्पश्चात् वैदिक मंत्रों का संकलन करके 'रुद्राष्टाध्यायी' के रूप में नर एवं नारायण में सम्बन्ध स्थापित करते हुए, किसी मन्त्रमनीषी विद्वान् मुनि ने कर्मठ विद्वानों के सम्मुख यह 'रुद्राभिषेक'—पद्धति के रूप में उपस्थित किया, जो आज "रुद्रप्रिया" भाषाव्याख्या के साथ आपके सामने है।

यह ग्रन्थ लोकोपयुक्त होते हुए अध्यात्म-प्रतिपादक भी है; क्योंकि इसमें ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन है। जहाँ लौकिक रूप में परमात्मा की सगुण-उपासना, भक्तिमहिमा, शान्ति-विधान, धनधान्य-प्रवर्धन-पूर्वक आयुर्विज्ञान तथा स्वास्थ्य-विधान का वर्णन विविध प्रकार के यज्ञों द्वारा विहित है, वहीं उनके निर्गुणत्व का भी निरूपण गुरुरूप में निहित है। अर्थात् सृष्टि-सुरक्षा-संहार का स्वरूप कथन करते समय मूलप्रकृति एवं मूलभूत रुद्र (ब्रह्म) का निरूपण जो किया गया है, उससे भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों का विवेचन भी संक्षिप्तरूपेण तत्त्वदर्शी विद्वानों की समझ में आ जाता है। इससे विदित होता है कि यह क्रियापरक मन्त्र-ग्रन्थ पुरातन एवं आर्ष है; क्योंकि उपनिषदों एव स्मृति ग्रन्थों में भी इस 'रुद्राष्टाध्यायी' नामक वैदिक ग्रन्थ की चर्चा तथा महिमा मिलती है। पुराणों में तो इसके पाठ एवं अभिषेक कर्म का माहात्म्य[1] स्पष्टरूपेण वर्णित है। इसलिये संक्षेप में इस ग्रन्थ का महत्व भी प्रकट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

---

१. इसका माहात्म्य इसी ग्रन्थके अन्तमें परिशिष्ट तीन में देखिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रसंगवश सर्वप्रथम 'रुद्र' शब्द की व्याख्या के साथ रुद्राष्टाध्यायीत्व का निरूपण कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है। देखिये—

रुत् = रोदनं (दुःखं) द्रावयतीति 'रुद्रः' किंवा रुद्रं उपशाम्यतीति 'रुद्रः'। यद्वा 'रु' गतौ[1] धातोर्भावे क्विप् तुगागमे कृते रुतं ज्ञानं राति (ददाति) इति रुद्रः = ज्ञानप्रदो मोहनाशकः (अज्ञाननाशको जगद्गुरुः परमात्मा सदाशिव इत्यर्थः)। वास्तव में जो स्वयं ज्ञानस्वरूप है और ज्ञानप्रदाता है, उसे ही 'रुद्र' (ब्रह्म या परमात्मा) कहते हैं। वही मूलरुद्र 'ब्रह्म' तथा मूलाप्रकृति 'ब्रह्मशक्ति' है, जो जगत् में प्रकृति-पुरुष के नाम से व्यवहृत होता है। वही ब्रह्माणी-ब्रह्मा, रमा-विष्णु तथा रुद्राणी-रुद्र (शिव) हैं। उन्हीं 'रुद्र' भगवान् की प्रार्थना इस 'रुद्राष्टाध्यायी' ग्रन्थ में (यज्ञपुरुष की प्रार्थना के रूप में) है।

श्रीमद्देवीभागवत महापुराण में रुद्रोत्पत्ति[2] के विषय में लिखा है कि मूल-प्रकृति भगवती की इच्छा से ही मूल रुद्रांश रूप का प्रादुर्भाव हुआ। तथाहि—

"इच्छया ब्रह्मणो वक्त्राद्वरदानार्थमुद्बभौ।
मूलरुद्रस्यांशभूतो 'रुद्र'[3] नामाऽद्वितीयकः॥
सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषां मूलरुद्रस्य का कथा॥" २६॥

सर्वप्रथम सृष्टि के प्रसङ्ग में कहा गया है कि इस दृश्यमान् जगत् का मूल कारण 'ॐ' ब्रह्म है। उसीसे स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं तुरीय की सृष्टि हुई है। अर्थात् जिस प्रकार वेद प्रणव ॐ में अ + उ + म + ँ अर्द्धमात्रा विमिश्रित[4] है उसी प्रकार क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा मूलप्रकृति ब्रह्मशक्तिस्वरूपा देवी से

---

१. ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः इति संस्मरणात्।

२. 'रुद्र' के विषय में देखिये—'रुद्रकल्प', 'विद्येश्वर संहिता 'सूत संहिता', विश्वमित्रकल्प' तथा 'गायत्रीपुरश्चरण'।

३. "विष्णोरप्यधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणोऽधिकः।
तस्मान्न संशयः कार्यो विष्णुना शिवपूजने॥"
(दे० भा० ५ स्कं० १ अध्याय २५ श्लो०)

४. 'अकारो भगवान् ब्रह्माऽप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम्।
मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी॥ २३॥
उत्तरोत्तरभावेनाऽप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः॥ (दे० भा० ५ स्कं० १ अ०)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युक्त है। अर्थात् त्रिदेवों में श्रेष्ठ 'रुद्र' है, उनसे भी श्रेष्ठतरा जगज्जननी हैं। देखिये—

"स हि सर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम्।
सुषुप्तस्थाननाथः स विष्णुना च प्रपूजितः॥"
(दे० भा० ५ स्कं० १ अ० २१ श्लोक)

रुद्रभगवान् की श्रेष्ठता के विषय में 'रुद्रहृदयोपनिषद्'[1] में इस प्रकार लिखा है :—

"सर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वे देवाः शिवात्मकाः।
रुद्रात्प्रवर्त्तते वीजं वीजयोनिर्जनार्दनः॥ ४॥
यो रुद्रः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा स हुताशनः।
ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र अग्नीषोमात्मकं जगत्॥ ८॥
रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमोनमः।
रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमोनमः॥ १९॥
रुद्रो वेदः स्मृतिश्चोमा तस्मै तस्यै नमोनमः।
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमोनमः॥ २०॥
रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमोनमः।
श्रीरुद्र-रुद्र-रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद् विचक्षणः॥ २१॥
कीर्त्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ये न जानन्ति दैवतम्॥ २२॥
सर्वदेवात्मकं रुद्रं नमस्कुर्यात्पृथक् पृथक्।
एभिर्मन्त्रपदैरेव नमस्यामीशपार्वतीम्॥" २४॥

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि रुद्र ही मूल प्रकृति–पुरुषमम आदिदेव साकार ब्रह्म हैं। वेद-विहित यज्ञपुरुष स्वयम्भू 'रुद्र' हैं। इसीसे "रुद्राष्टाध्यायी" नामक यह ग्रन्थ वेद-मन्त्रों का सङ्कलनमात्र है—जो अतीव प्राचीन है। इसके मूल संकलयिता का नाम यद्यपि अद्यावधि अज्ञात है, तथापि 'आर्ष' होने के कारण सर्वमान्य एवं लोकोपकारी स्वतःसिद्ध है।

रुद्राष्टाध्यायी के 'संस्कृतार्यभाषा-भाष्यकर्त्ता तथा अनेक संस्कृत ग्रन्थों के टीकाकार स्व० पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्र महोदय ने अपनी भूमिका में ठीक ही लिखा है कि—

---

१. "यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद् विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः"॥ (इति श्रुतिः)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

"जिस प्रकार दूध से मक्खन निकाल लिया जाता है, उसी प्रकार द्विजातियों के कल्याण के निमित्त इस 'रुद्राष्टाध्यायी' का महात्माओं ने संग्रह किया है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इस ग्रंथ में गृहस्थधर्म, राजधर्म, ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, ईश्वरस्तुति, आदि अनेक सर्वोत्तम विषयों का वर्णन है।"

× × ×

परन्तु बड़े आश्चर्य एवं खेद का विषय है कि ऐसा अमूल्य ग्रन्थरत्न जिन लोगों के हाथों में है--जिन लोगों के व्यवहार में है—उनमें कुछ को छोड़कर प्रायः सभी वेदतत्त्वार्थानभिज्ञ होते हैं। अथवा उनके विचार में वेदमंत्र केवल पाठ तथा श्रवण के लिये ही हैं। यह धारणा वास्तव में घातक प्रतीत होती है; क्योंकि जबसे यह धारणा भारतीय विद्वत्समाज में आयी है, तबसे उत्तरोत्तर हम वैदिक महत्त्व एवं वेद-तत्व से दूर रहने लगे फलतः उन्हीं मन्त्रों के अर्थानुसन्धान द्वारा विदेशी वैज्ञानिकों ने वेद-तत्त्व के आधार पर इतना आविष्कार कर लिया और आगे भी वे करते जाते हैं। अर्थात् जिस प्रकार सूत्रों (कपासतत्वों) द्वारा अनेक प्रकार के वस्त्र निर्माण करके मानव अपने उपयोग में लगाते हैं, उसी प्रकार हमारे वैदिक सूत्रों (ऋचाओं) तथा मंत्रोंद्वारा भी प्राचीन काल में अनेक प्रकार के आविष्कारों से इस विशाल जगत् को वैभवशाली बनाया था; पर आज हम केवल उन्हें कण्ठस्थ रखने एवं ब्राह्य व्यवहार द्वारा ही कुछ संकुचित स्थानों में उपयोग करते हैं। यह इसलिये होता है कि हम वैदिक जगत के जीव वेदार्थतत्त्व-विहीन हैं। अस्तु,

हमारी यह धारणा पाँच सौ वर्ष के इधर की ही है। प्राचीन ग्रन्थों में वेदार्थ एवं वेद-तत्त्वार्थ की बड़ी महिमा गायी गयी है। देखिये निरुक्तकार का कथन है कि—

"स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इतः सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।"

अर्थात् जो वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता, वह भारवाही पशु के समान है, अथवा निर्जन वन के सुमधुर उस रसालवृक्ष के समान है, जो न स्वयं उस अमृत-रस का आस्वादन करता है, न किसी को देता ही है। सुतराम् जो वेदमंत्रों के अर्थ को भलीभाँति जानता है, उसीका वास्तविक कल्याण होता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महर्षि पाणिनि के समय में भी अर्थज्ञ होने का प्रबल प्रमाण मिलता है 'पाणिनीयशिक्षा' में लिखा है—

"गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाऽधमाः ।"

यहां भी अनर्थज्ञ की निन्दा की गयी है। इसलिये द्विजातिमात्र को 'वेद तत्वार्थविद' बनना चाहिये; क्योंकि अर्थसहित मंत्रजाप तथा स्तुति-पाठ का विशेष महत्त्व है। सुतराम् इस 'रुद्राष्टाध्यायी' वैदिक ग्रन्थ का भी अर्थसहित स्वाध्याय, पाठ एवं तत्प्रयुक्त यज्ञ (रुद्राभिषेकै आदि) विधान करने से तदुपयुक्त फल अवश्य प्राप्त होंगे। अस्तु।

रुद्राष्टाध्यायी के सम्बन्ध में उपनिषद् एवं पुराणों में भी कहा गया है कि इसके पाठानुष्ठान से समस्त पापों का नाश, आरोग्य एवं आयुष्यवृद्धि होती है। सुदुर्लभ मोक्ष तक इसके द्वारा सुलभ हो जाता है। कैवल्योपनिषद्में लिखा है—

"यः शतरुद्रियमधीते सोऽग्निपूतो भवति, स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति, सुरापानात्पूतो भवति, ब्रह्महत्यातः पूतो भवति, कृत्याकृत्यात्पूतो भवति। तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति, अत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेदनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनं तस्माद्देवं विदित्वैनं कैवल्यं फलमश्नुते।"

अर्थात् जो व्यक्ति रुद्राष्टाध्यायी का पाठ करता है, वह अग्नि से तपाये सुवर्ण की भाँति पवित्र होकर चमकने लगता है। वह सोना चुराने के पाप से विमुक्त हो जाता है, वह मदिरा-पान के दोष से छूट जाता है तथा ब्रह्महत्या के पाप एवं कृत्याकृत के पातक से रहित होकर पवित्र बन जाता है। यहां तक कि अनाश्रमी होते हुए भी वह सर्वदा या एकवार भी रुद्री-पाठ करने से पवित्र हो जाता है। अन्त में वह व्यक्ति सद्ज्ञान प्राप्त करके आवागमन से रहित हो जाता है। इस कारण इस[1] 'शतरुद्रिय' का पाठ अवश्य करना चाहिये। इससे कैवल्य-प्राप्ति निश्चित होती है। शातातपमुनि ने भी कहा है—

"स्तेयं कृत्वा गुरुदाराश्च गत्वा मद्यं पीत्वा ब्रह्महत्याञ्च हृत्वा।
भस्मच्छन्नो भस्मशय्याशयानो रुद्राष्टाध्यायी मुच्यते सर्वपापैः॥"

---

१. रुद्राष्टाध्यायी के पञ्चम अध्याय को 'शतरुद्रिय' कहते हैं। शतरुद्रियमाख्यस्य 'नमस्ते रुद्रमन्यव,' इति रौद्राध्यायस्येति वचनात्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अर्थात् सुवर्णस्तेयी, गुरुदाराभिगामी, मद्यपी, ब्रह्महत्यारा आदि भी सर्वांग में भस्म लगाकर भस्मरूपी शय्यापर शयन करके तथा रुद्राष्टाध्यायी का पाठ करके, सब पातकों से छुटकारा पा जाता है। इसी प्रकार वायुपुराण में भी कहा है—

"यश्च सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ।
सर्वान्नात्मगुणोपेतां सुवृक्षजलशोभिताम् ॥
दद्यात्काञ्चनसंयुक्तां भूमिं चौषधिसंयुताम् ।
तस्मादप्यधिकं तस्य सकृद्रुद्रजपाद्भवेत् ॥
यश्च रुद्राञ्जपेन्नित्यं ध्यायमानो महेश्वरम् ।
स तेनैव च देहेन रुद्रः सञ्जायते ध्रुवम् ॥"

अर्थात् जो व्यक्ति समुद्रपर्यन्त, वन, पर्वत एवं श्रेष्ठ गुणों से युक्त, सलिल एवं वृक्षों से युक्त ऐसी पृथिवी का दान करता है—जो धन, धान्य, सुवर्ण एवं वस्त्रों से युक्त है, उससे भी अधिक पुण्य रुद्री[1]-जप एवं 'रुद्राभिषेक' का है। इसलिये जो भगवान् रुद्र का ध्यान[2] करके इस रुद्री का पाठ करता है, किंवा रुद्राभिषेक यज्ञ करता है, वह उसी देह से निश्चय ही रुद्ररूप हो जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। महामुनि 'शङ्ख' का कथन है कि गुप्त से भी गुप्त महापातकों का प्रायश्चित्त इस 'रुद्री' द्वारा होता है। रुद्री किंवा शतरुद्रिय के विषय में जावालोपनिषद् में लिखा है—

"अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः—'किं जप्येनैत्राऽमृतत्वमश्नुते ?' ब्रूहीति—स होवाच याज्ञवल्क्यः शतरुद्रियेणेति ।"

अर्थात् जब आश्रम में ब्रह्मचारियों ने याज्ञवल्क्यमुनि से पूछा कि "किसके जप से निश्चय ही मुक्ति मिलती है ? तब याज्ञवल्क्यमुनि ने उत्तर दिया—"शतरुद्रिय के पाठ से अवश्यमेव मुक्ति मिलती है।"

× × ×

इस ग्रन्थ में ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों का वर्णन किया गया है। जहाँ लोक में इसके जप-पाठ से भक्तिमहिमा, शान्ति, पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि तथा

---

१. जप से तात्पर्य मानसिक पाठ से है।

२. रुद्रध्यान इसी पुस्तक के प्रारम्भ में है। उसका हृदयंगम करके पाठ करना चाहिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धनधान्ययुक्त स्वास्थ्य प्राप्त होता है, वहीं परलोक में सद्‌गति एवं परमपदार्थ (मोक्ष) भी प्राप्त होता है। इसलिये यह द्विजातिमात्र को—विशेषकर कर्मठ पुरुषों को—अपने पास अवश्य रखना चाहिये।

यह सब विशेषता देखकर ही मैंने चौखम्वा संस्कृत-सीरीज-आफिस', वाराणसी के मालिक के आदेशानुसार इस रुद्राष्टाध्यायी की "रुद्रप्रिया" नामक भाषाटीका (व्याख्या) बड़ी सावधानी से की है। साथ ही शुद्धपाठ, स्वर आदि के विचारानुसार मूल मंत्रों का सम्पादन करके सरस-सरल एवं सर्वसाधारणोपयोगी सुवोध राष्ट्र-भाषा में सन्दिग्ध स्थलों को स्पष्ट करने का भी प्रयत्न किया है। बीच-बीच में संस्कृत एवं हिन्दी में उपयुक्त टिप्पणियों से संवर्द्धित यह ग्रन्थ जनसाधारण के लिये भी बड़े महत्व का हो गया है—ऐसा सहृदय सुधी सज्जनों का विचार है। फिर भी मानवी बुद्धि के कारण यत्र-तत्र त्रुटि हो जाना स्वाभाविक है। तदर्थ आशा है, कृपालु कर्मकाण्डी विद्वान् एवं भक्तजन उन त्रुटियों को सुधार कर पढ़ेंगे और हमें भी सूचित करने की कृपा करेंगे, जिससे द्वितीय संस्करण में वह त्रुटि न रह सकेगी।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

महाशिवरात्रि
सं० २०२५ वि०

विद्वत्कृपाकांक्षी—
श्रीसरयूप्रसाद 'द्विजेन्द्र'
वी० ३७।७७, विरदोपुर, वाराणसी—१

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वैदिक वर्णोच्चारण

श, ष, स, ह तथा ऋ से संयुक्त यदि रेफ एवं लकार हो तो 'रेफ' का उच्चारण 'रे' और 'ल' का उच्चारण 'ळे' होता है। यदि 'य' पदादि में असंयुक्त हो तथा ह, ऋ, एवं रेफ से संयुक्त हो तो 'य' का उच्चारण 'ज' होता है। इसी प्रकार ट, ठ, ड, ढ, ण से संयुक्त यदि 'ष' हो तो 'ष' का उच्चारण 'श' होता है। यदि कहीं पदादि में 'व' हो ,तो गुरु 'व्व' एवं मध्य में हो तो लघु 'व' और अन्त में हो तो अत्यन्त ह्रस्वोच्चारण (व) करे। श, ष, स, ह, तथा 'ऋ' से पूर्व और ह्रस्व से पर में यदि कहीं अनुस्वार हो तो अनुस्वार के स्थान में ꣳ (ꣳ) एवं तथोक्त वर्ण से पूर्व दीर्घाक्षर से परे हो तो ह्रस्वस्थानिक ꣳ तथा संयुक्त वर्ण से पूर्व और दीर्घ वर्ण से परे हो तो अनुस्वार के स्थान में गुरुस्थानिक ꣳ का उच्चारण करना चाहिये।

इसके विशेष परिज्ञान के लिये 'प्रतिज्ञापरिशिष्ट' किंवा 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' देखें। तात्पर्य यह है कि वेद के मन्त्रों में उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित चिह्नों का परिज्ञान अत्यावश्यक है। ऊँचे उच्चारण के लिये 'उदात्त,' (') नीचे उच्चारण के लिये 'अनुदात्त (–) तथा मध्योच्चारण (सम) के लिये कोई चिह्न नहीं रहते। इस प्रकार गुरु द्वारा मन्त्रोच्चारण का विशेष महत्व है। जो अभ्यासावस्था में हाथ के संकेत द्वारा किया जाता है। यह गुरुपरम्परया श्रुत एवं दृष्ट है। इसलिये स्वरोच्चारण के अपराध से बचना चाहिये। नहीं तो 'यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोऽपराधात्' के अनुसार मन्त्रोच्चारी व्यक्ति दोषी बनता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ रुद्रध्यानम्

ॐ शुद्धस्फटिकसंकाशं त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रकम् ।
गङ्गाधरं दशभुजं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १ ॥
नीलग्रीव–शशाङ्काङ्क–नाग–यज्ञोपवीतिनम् ।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयञ्च वरेण्यमभयप्रदम् ॥ २ ॥
कमण्डल्वक्षसूत्राभ्यामन्वितं शूलपाणिनम् ।
ज्वलन्तं पिङ्गलजटाजूटमुद्योतकारिणम् ॥ ३ ॥
दिग्देवतासमायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम् ।
नित्यञ्च शाश्वतं शुद्धं ध्रुवमक्षरमव्ययम् ॥ ४ ॥
सर्वव्यापिनमीशानं रुद्रं वै विश्वरूपिणम् ।
एवं ध्यात्वा द्विजः सम्यक् ततो यजनमारभेत् ॥ ५ ॥

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥ ६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्याख्याकारकृतमङ्गलम्

ॐ प्रियां ऋग्यजुःसाम्नां गायत्रीं वेदमातरम् ।
मूलप्रकृतिरूपां तां प्रणम्य परमेश्वरीम् ॥ १ ॥

'रुद्रप्रिया'ऽभिधा व्याख्या 'द्विजेन्द्रेण' वितन्यते ।
यया सर्वत्र सङ्कल्पसिद्धिर्भवति सर्वदा ॥ २ ॥

वरुण, वह्नि, कुवेर, रवीन्दु को,
अनिल रुद्र महाप्रभु को तथा ।
विधि हरीश प्रधान त्रिदेव को,
हृदय-मन्दिर में रख नित्य मैं ॥ ३ ॥

निगम-आगमसिद्ध सरस्वती,
गणपती गिरिजासुत को तथा ।
कर प्रणाम यहां हम कर रहे,
तिलक चारु द्विजेन्द्र-प्रियोत्तम ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ श्रीः ॥

रुद्राष्टाध्यायी

सटिप्पण 'रुद्रप्रिया' हिन्दीव्याख्यासहिता

प्रथमोऽध्यायः

हरिः ॐ ॥ गणानांन्त्वागणपतिꣳहवामहेप्प्रियाणांन्त्वाप्प्रियपतिꣳहवामहेनिधीनान्त्वांनिधिपतिꣳहवामहेव्वसोमम । आहमंजानिगर्ब्भंधमात्त्वमंजासिगर्ब्भंधम् ॥ १ ॥

प्रसंग—प्रायः सभी वेद-मंत्र कामधेनु के समान हैं। यद्यपि प्रस्तुत यह मन्त्र अश्वमेध यज्ञ के प्रकरण में राजमहिषियों द्वारा अश्व के प्रति विहित है, तथापि यहाँ वैदिक कर्मकाण्डियों ने सर्वप्रथम देवपूज्य गणपति के अर्थ में इसका प्रयोग किया है। अतः रुद्राभिषेक के प्रसंगवश यहाँ विघ्नविनाशक गणेश[1] जी के लिये ही मंगलाचरण के रूप में विहित है। देखिए—

हे प्रजापते ! अष्ट वसु[2] रूपी गणपते !! हम सभी याजक आपका आवाहन करते हैं; क्योंकि अग्निप्रभृति अथवा कुण्या फड आदि देवगणों के मध्य में आप ही 'गणपति' (गणेश) रूप से प्रजापालक हैं। आपही प्रिय मित्रों के भी प्रतिपालक हैं। पद्मादि नवनिधियों के मध्य में आप ही सुखरूपेण विराजमान होकर 'निधिपति' कहे जाते हैं। हे देवेश ! विघ्नेश्वर भगवान् गणेश ! आप ही

---

१. यहाँ पर केवल 'गणपति' शब्द के कारण गणेश-पूजन में यह मंत्र प्रयुक्त होता है। इसलिये यही अर्थ अभीष्ट है।

२. वसुः—वसत्यस्मिन्सर्वं जगद्वा वसुस्तत्सम्बुद्धौ हे वसो ! अग्न्यादि अष्टवसुपते ! देवाधिदेव ! इत्यर्थः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गर्भं बीज द्वारा समस्त चराचर जगत् को प्रकट करते हैं, और स्वयं भी स्वतंत्रता पूर्वक प्रकट हुए हैं। इसलिए हमारी सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिये आप वीर्यं (तेज) रूप से गर्भ धारण (सृष्टि रचने) करने की शक्ति देवें; क्योंकि आप स्वयं गर्भं[1] रूप बीज को धारण करनेवाले सब के सामने प्रत्यक्ष होते हैं॥ अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में महिषियाँ भी इसी प्रकार गर्भ धारण हेतु उनकी स्तुति किया करती हैं। यह मंत्र आध्यात्मिक दृष्टि से भी बड़े महत्व का है[2] ॥ १ ॥

गायत्रीत्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ २ ॥

हे अश्वस्वरूप देव! गायत्री (गानेवालों की रक्षिका देवी), त्रिष्टुप् (त्रिविधताप नाशक), जगती (संसारव्यापी), अनुष्टुप् छन्द (शोक संताप को हरने वाला), पंक्तियों के साथ तथा बृहती (बड़ी), उष्णिक् (गर्मी को शान्त करने वाली), छन्द दिशाओं एवं सत्तियों के साथ तुमको शान्ति पहुँचावें। अर्थात् ये वैदिक वृत्त तुम्हारा कल्याण करें अथवा हे परमेश्वर! समस्त ऋषि, मुनि, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, उष्णिक्, इन वैदिक सात[3] छन्दों द्वारा सर्वदा सर्वत्र आप की स्तुति करें॥ २ ॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३ ॥

---

१. गर्भधं = गर्भधारकं रेतस्तेजोविशेष इति भावः।

२. आहमजानि = आ समन्तात् अहं वीर्यम् आकृष्य अजानि=श्रद्धया स्वीकृत्य फलोन्मुखी करोमीत्यर्थः।

नोट—गायत्री छन्द २४ अक्षर का, त्रिष्टुप् छन्द ४४ का, जगती छन्द ४८ वर्ण का, अनुष्टुप् छन्द ३२ का, पंक्ति ४० का, बृहती ३६ का तथा उष्णिक् छन्द २८ अक्षर का होता है।

३. तावानकंरथस्यास्य प्रगस्तस्मिन् हयाः शुभाः।
सप्त छन्दोऽभिधानाश्च सूरसूतेन योजिताः॥
(दे० भा० ८ स्कं० १५ अ० ३९ श्लो०)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे भगवन् ! दो चरणों वाली, तीन चरणों वाली, चार चरणों वाली, छः पदों, वाली, छन्दहीन तथा छन्दसहित सभी प्रकार की ऋचायें[1] (वेदमंत्र) आपको शान्ति प्रदान करें। अथवा द्विपद (मनुष्य-पक्षी) चतुष्पद (जानवर) त्रिपद, षट्पद (भ्रमर एवं मच्छर आदि जन्तु) परतंत्र किंवा स्वतंत्र सभी जीव इस संसार में आप के लिये कल्याणकारी हों ॥ ३ ॥

सहस्तोमाः सहछन्दस ऽआवृतः सहप्रमा ऽऋषयः सप्तदैव्याः ।
पूर्वेषाम्पन्थामनुदृश्य धीरा ऽअन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥ ४ ॥

गायत्री आदि छन्दों के ज्ञाता, शब्द प्रमाण (व्याकरण) के परिवेत्ता, मंत्रद्रष्टा[2] सप्तर्षियों (कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और जमदग्नि) किंवा पूर्वजों के मार्गों का अनुसरण करके हम लोग भी इस सृष्टि का परम्परया उसी प्रकार प्रारम्भ करें, जिस प्रकार पहले विधाता[3] (ब्रह्मा) ने किया था। अथवा जैसे सारथि घोड़ों को वश में रखने वास्ते पहले लगाम खींचता हैं, वैसे ही हम लोग हे प्रभो ! अपनी इन्द्रियों को वश में करके अपनी बुद्धि सुव्यवस्थित करें। इस प्रकार हमें आप प्रेरणा देवें, जिससे हम सभी प्राणी श्रद्धापूर्वक सदनुष्ठानद्वारा प्रजासृष्टि में प्रवृत्त हों। क्योंकि बुद्धिमान् कश्यपादि ऋषि ही सृष्टि कार्य में सर्वप्रथम प्रवृत्त हुए थे और उन्होंने जो पथ प्रदर्शित किया है, वह हम प्रजाओं के लिए कल्याणकारी है ॥ ४ ॥

ॐ [4]यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥

---

१. पूर्व मंत्र में 'वर्णवृत्त' एवं इस मंत्र में 'मात्रिक छन्दों' का संकेत है। ये सभी मंत्र अनेकार्थक हैं, इसी से वैदिक ऋचाएँ (वेद मंत्र) कामधेनु के समान कही गयी हैं।

२. 'ऋषयो मंत्रद्रष्टारो न तु कर्त्तारः' इति भावः।

३. 'सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' (श्रुतिः)

४.'यज्जाग्रतः' इत्याद्यैर्मन्त्रैः षड्भिः क्रमात् स्पृशेत् ।
देवस्य दक्षिणं पार्श्वं वामं पृष्ठं शिरः पदौ ॥ (यजुर्विधान शिक्षायाम्)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथोक्त सृष्टि कार्य के लिये 'मन'[१] ही मुख्य है इसलिये इस मंत्र में ऋषियों का कथन है कि हे प्रभो! हमारा मन सर्वदा धार्मिक कार्यों में कल्याणकारी संकल्पवाला बना रहे। क्योंकि जो मन जगत् में जागते हुए जीवों (पुरुषों) के नेत्रों से कार्य बिना भी सर्वथा दूर भागता रहता है, जो मन प्रकाशक आत्म-देव का ग्राहक है, वही सोते समय (स्वप्नावस्था में) पुनः न जाने कहाँ से आ जाता है। जो सुषुप्ति काल में प्रभु में लीन होते हुए भी स्वप्न काल में भूत, भविष्य, वर्तमान में होने वाले पदार्थों का ग्राहक है तथा जो मन श्रोत्रादि बहिरिन्द्रियों का प्रकाशक, ज्योतिस्वरूप एवं कर्मेन्द्रियों का संचालक है। अर्थात् आत्मा मन से, मन इन्द्रियों से, एवं इन्द्रियाँ पदार्थों से संयोग करती हैं। सुतराम् मन के विना किसी वस्तु में प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिए मेरा वह मन सत्संकल्पयुक्त होकर सर्वदा धर्म-कर्म में प्रवृत्त रहे, यही प्रार्थना है ॥ ५ ॥

[२]येनकर्म्माण्यपसोमनीषिणोयज्ञेकृण्वन्तिविदथेषुधीराः ।
यदपूर्व्वंयक्षमन्तःप्रजानान्तन्मेमनःशिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

धर्मकर्मानुष्ठान में नित्य तत्पर, बुद्धिमान् एवं मनीषी मुनिजन जिसके मन के द्वारा सत्कर्म में लगे रहते हैं, जो मानवमात्र के शरीर में स्थित है, जो इन्द्रियों से पहले ही अन्तःकरण में अवस्थित रहता है। अर्थात् स्थूल इन्द्रियां बाहर में रहती हैं, परन्तु मन आभ्यन्तर में विराजता रहता है, जो सब इन्द्रियों का प्रधान राजा (दिव्यदेवोपम) है। साथ ही जो मन यज्ञ सम्बन्धी हवि आदि पदार्थों के परिज्ञान में सर्वप्रथम परिगणित होता है तथा अपूर्व आत्म-भाव से हृदय में संस्थित रहता है वह मेरा मन धार्मिक कर्मों का संकल्पवाला एवं सतत कल्याणकारी बना रहे ॥ ६ ॥

यत्प्रज्ञानमुतचेतोधृतिश्चयज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु ।
यस्मान्नऽऋतेकिञ्चनकर्म्मक्रियतेतन्मेमनःशिवसङ्कल्पमस्तु ॥७॥

---

१. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

२. मेरुतन्त्रेऽप्युक्तम्—'अयुतं प्रजपेदेनां चित्तस्थैर्यं प्रजायते।' 'संकल्पविकल्पात्मकं मनः' इत्युक्तत्वान्मनोनिग्रहः कर्त्तव्य इति भावः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो मन प्रकृष्ट ज्ञान अथवा बुद्धिवर्द्धक है, जो सामान्य तथा विशेष ज्ञान का ज्ञापक है, जो स्वतः चित्स्वरूप एवं धैर्यशील है तथा जो मन आत्मस्वरूप होने के कारण अविनाशी एवं प्राणिमात्र के अन्तःकरण में प्रकाश देनेवाला है यहाँ तक कि जिसके बिना कोई भी कार्य सम्पादित नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन सत्संकल्पवाला तथा कल्याणकारी बने ॥ ७ ॥

येनेदम्भूतम्भुवनम्भविष्यत्परिगृहीतममृतेनसर्व्वम् ।
येनयज्ञस्तायतेसप्तहोतातन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ८ ॥

जिस मन की भूत, भविष्य, वर्तमान काल में उपस्थित समस्त पदार्थों में सर्वदा प्रवृत्ति रहती है, जो मन मुक्तिपर्यन्त रहने के कारण अविनाशी कहा गया है। अर्थात् श्रोत्रादि बहिरिन्द्रियों के विनष्ट होने पर भी जो चैतन्य रूपेण विराजित रहता है। जिसके द्वारा सातो होता-होतृ-मैत्रावरुणादि वाला 'अग्निष्टोम' यज्ञ का विस्तार होता है, वह मेरा मन शान्त तथा सत्संकल्पयुक्त होकर कल्याणकारी रहे ॥ ८ ॥

यस्मिन्नृचःसामयजूꣳषियस्मिन्प्रतिष्ठितारथनाभाविवाराः ॥
यस्मिँश्चित्तꣳसर्व्वमोतम्प्रजानान्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥९॥

जिस मन में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की सब ऋचाएँ (मंत्र) उपस्थित हैं, तथा वेदत्रयी (ऋग्यजुःसाम) की ज्योति चमक रही है। अर्थात् जैसे रथचक्र (पहिये) के बीच में उसके आरे अवस्थित रहते हैं, वैसे ही मन में सम्पूर्ण शब्दजाल (वैखरी विद्याएँ) स्थित रहती हैं, अथवा प्रजाओं का सब ज्ञान जिस मन में—वस्त्र में तन्तु के समान—सर्वत्र सर्वदा ओत-प्रोत रहते हैं; क्योंकि मनोयोग से ही ज्ञानोत्पन्न होता है, इस प्रकार का वह मेरा मन शान्त एवं सत्संकल्प वाला हो ॥ ९ ॥

सुषारथिरश्वानिवयन्मनुष्यान्नेनीयतेभीशुभिर्व्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठंयदजिरञ्जविष्ठन्तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १० ॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिस मन की प्रेरणा से समस्त प्राणी अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं अर्थात् जो मन मानव[1] प्रभृति सम्पूर्ण जीवों को इधर से उधर और उधर से इधर ले जाया करता है। उस मन के विषय में दो दृष्टान्त देखिये—

लगाम और चाबुक। जैसे चतुर सारथि लगाम द्वारा तेज अश्वों को खींचकर अपने वश में करता है तथा ऊपर से चाबुक लगाकर उसे सावधान करता है, उसी प्रकार सुजान साधक चक्षु आदि चंचल इन्द्रियों को मन द्वारा खींचकर अपने-अपने कार्यों में यथासमय लगाये रखता है। जो मन जरा (वृद्धावस्था) से रहित होकर सर्वदा बालकपन एवं युवापन की भांति अत्यन्त चंचल रहता है, जिसके कारण मनुष्य के प्रत्येक अङ्ग बार-बार विविध प्रकार के विषयों में प्रवृत्त रहता है, ऐसा हृदय में स्थित रहनेवाला मेरा मन चंचल[2] हितकर कार्यों में सर्वदा सत्संकल्पयुक्त बना रहे—यही हमारी प्रभु से प्रार्थना है॥ १०॥

प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

---

१. मनुष्यग्रहणं प्राणिमात्रोपलक्षणम्।

२. 'न वै वातात्किञ्चनाशीयोंऽस्ति न मनसः किञ्चनाशीयोंऽस्ति' इति श्रुतिप्रामाण्याच्चंचलत्वं सूचितम्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ द्वितीयोऽध्यायः

हरिः ॐ ॥ सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सभूमिᳪ सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

प्रसंग—सर्वत्र व्यापक, अव्यक्त एवं विलक्षण चेतन स्वरूप विराट पुरुष की साकार मूर्त्ति का यहाँ पर ब्रह्मा जी स्तुति कर रहे हैं, क्योंकि निराकार ब्रह्म का समस्त ब्रह्माण्ड स्थूलाङ्गोपलक्षणमात्र है। इसलिये सगुण, निर्गुण का भेद-भाव त्यागकर सर्वत्र सर्वशक्तिमान् परमात्मा को अपने हृदय-देश में विराजमान देखे।

समष्टिरूप से व्याप्त भगवान् के सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों पैर हैं। अर्थात् प्राणिमात्र के सिर में अन्तर्वर्ति होने के कारण वह पुरुष[२] (परमात्मा) अनन्त सिरवाला हुआ। इसी प्रकार सहस्रों नेत्र, पाद एवं इन्द्रियों से मुक्त होकर वह प्रभु पार्थिव शरीर में नाभि से दश अंगुल ऊपर जाकर सब प्राणियों के हृदय में विराजता है॥ १॥

पुरुषऽएवेदᳪ सर्वंय्यद्भूतंय्यच्चभाव्व्यम् ।
उतामृतत्त्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

इस सृष्टि में यह जो वर्तमान जगत् दृष्टिगोचर हो रहा है, किंवा भूतकाल में जो था तथा भविष्यत् काल में भी जो रहेगा, वह सब विराट् पुरुष के ही अवयव हैं। अर्थात् वह परम पुरुष सर्वदा सर्वत्र प्राणियों के देह में विराजमान रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक कल्प में प्राणिमात्र देहधारी होकर

---

१. 'सहस्रशीर्षा' से 'यज्ञेनयज्ञ' तक १६ मंत्र "पुरुषसूक्त" कहा जाता है। इनके पृथक् पृथक् विनियोग भी हैं, जो पूजन काल में काम आते हैं।

२. पुरुषः—पूर्षु शेतेऽवतिष्ठते योऽसौ पुरुषः पूरुषो वा। सोऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदान्तर्ज्योतिरिति श्रुतेः। तथाहि लोके—

'नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटी युगधारिणे नमः॥"

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विराट् पुरुष के ही अवयव रूप से रहते हैं। वही परमात्मा अन्नरूप फल के निमित्त से काल-कर्मवश अपनी कारणावस्था को त्यागकर जगदवस्था को प्राप्त होता रहता है। क्योंकि ब्रह्मादि प्रधान देवता भी भोग्यान्नद्वारा ही स्थित रहते हैं, उन सबों का स्वामी केवल वही पुराण[1] पुरुषा है, जो जीवों में पूर्व कर्मवश जन्म मृत्यु के चक्र में आते हुए भी अमरत्व प्राप्त करने के कारण 'मोक्षपति' कहा गया है। यह जगत् तो उसका क्रीड़ामात्र है वास्तव में वह अजर-अमर एवं अजन्मा है ॥ २ ॥

एतावा॑नस्यमहि॒मातो॒ज्ज्याया॑ँश्च॒पूरु॑षः ।
पादो॑स्य॒व्विश्वा॑भू॒तानि॑त्रि॒पाद॑स्या॒मृत॑न्दि॒वि ॥ ३ ॥

यह सब भूत, भविष्य, वर्तमान काल से सम्बन्धित जो सम्पूर्ण जगत् दृष्टिगोचर होता है, वह सभी इस पुराण पुरुष की विभूति-विशेष है। वस्तुतः स्वरूप नहीं है, केवल महिमामात्र है। क्योंकि पुरुष तो उससे भी कहीं अधिक है। यह दृश्यमान् जगत् तो उसका चतुर्थांश (पादमात्र) है क्योंकि वह तो स्वयं त्रिपाद (ऋग्यजु:साम) अथवा 'भूर्भुवःस्वः' स्वरूप है। अमृतायमान वह पुरुष तो अविनाशी, नित्य एवं निर्विकार ओंकार रूप है। यद्यपि 'विज्ञानमयमात्मा' किंवा 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इन श्रुतिवचनों के अनुसार वह अलौकिक एवं अनिर्वचनीय है, तथापि लोक में वह स्वप्रकाश से संसार को प्रकाशित करता हुआ स्वतः द्योतमान[2] दिखाई देता है—ऐसा विद्वानों का कथन है ॥ ३ ॥

त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त्पुरु॑षः॒पादो॑स्ये॒हाभ॑व॒त्पुनः॑ ।
ततो॒व्विष्व॒ङ्व्यक्रामत्साशनानश॒ने अ॒भि ॥ ४ ॥

---

१. यहां पुराण पुरुष से तात्पर्य अनादि एवं अनन्त ब्रह्म से है, जिसकी अचिन्त्य चित् शक्ति मूल प्रकृति के रूप में निरन्तर कार्यशील रहती है। तभी तो 'पुरा न यस्मादसौ पुराणः 'पूर्षुं पुरि वा शेते इति पुरुषः' यह व्याख्या समीचीन कही गयी है; क्योंकि प्रकृति पुरुष में आदि सम्बन्ध बीजवृक्षवत् है।

—द्विजेन्द्रस्य।

२. सहज ध्यान योग द्वारा सफल साधक इसका प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं। देखिए 'देवी गीता' पर हमारी 'तत्त्वप्रकाशिका' विशद टीका—'द्विजेन्द्र'।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्रिपाद् (भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक) से भी ऊपर संसार से परे रहनेवाला वह विराट् पुरुष अज्ञानमूलक जगत् से बहिर्भूत अर्थात् गुणदोष विवर्जित निर्विकार ब्रह्मस्वरूप है। उस ब्रह्म के लेशमात्र[1] (एक पाद से) माया द्वारा इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय हुआ करती है। अर्थात् देव तिर्यक् आदि योनियों में विविध रूप होकर—भोजन आदि व्यवहार युक्त होते हुए भी वही पुरुष नदी-पर्वत-स्थावर-जंगम (चराचर) रूप में प्रविष्ट होकर—अनेक रूप से दृष्टिगोचर होता है ॥ ४ ॥

ततोव्विराडजायतव्विराजोऽअधिपूरुषः ।
सजातोऽअत्यरिच्च्यतपश्चाद्भूमिमथोपुरः ॥ ५ ॥

तदुपरान्त आदिपुरुष से उस विराड् (ब्रह्माण्ड) देह की उत्पत्ति हुई, जिसमें विविध प्रकार की वस्तुएँ विद्यमान रहती हैं। विराट् शरीर के ऊपर उसी शरीर को आधार मानकर तद्देहाभिमानी वह परम पुरुष (आत्मा) प्रकट हुआ, जो श्रुतिगम्य एवं अनुभवगम्य है। अर्थात् वह अपनी माया (प्रकृति) से विराट् ब्रह्माण्ड को बनाकर उसी में पुनः जीवरूपेण प्रविष्ट हो गया। पुनः वही विराट् पुरुष अन्यान्य देवता, तिर्यक् पशुपक्षी, एवं मनुष्यादि के रूप में देहाभिमानी होकर जीव संज्ञा को प्राप्त हुआ। तदनन्तर उसने भूमि को उत्पन्न करके समस्त विश्व की रचना की ॥ ५ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रेव्वायव्यानारण्ण्याग्ग्राम्म्याश्च्चये ॥ ६ ॥

उसके बाद सर्वात्मक उस पुरुषात्मा ने 'पुरुषमेध[2]' नामक यज्ञ द्वारा दधिमिश्रित घृत उत्पन्न किया। अर्थात् भोज्य पदार्थ (कन्द-मूल फल आदि

१. 'त्रिपाद' से यहाँ तात्पर्य है—तीनों गुण और एकपाद रजोगुण है। यही सृष्टि का मूल कारण है। इसी का प्रतीक 'ब्रह्मा' है।

२. जिस मानस-यज्ञ में पुरुष (नर) वायुजात अपनी इन्द्रिय रूपी पशुओं की ज्ञानाग्नि में आहुति देते हैं, अर्थात् जिसमें समस्त विश्व को हुत (समर्पित) किया जाय, उसे 'सर्वहुत' यज्ञ कहते हैं। इसी के अन्तर्गत नरमेध 'अश्वमेध' 'गोमेध' आदि यज्ञों की परिगणना मनीषी मुनियों ने की है। वैदिककाल का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रस द्रव्य) उत्पन्न करके वायुदेवतात्मक वन्य पशु-पक्षियों किंवा इन्द्रियों की उसी ने सृष्टि की। तत्पश्चात् ग्राम्य जीवों (कुत्ता, बिल्ली आदि) को उत्पन्न किया। इस प्रकार सर्वप्रथम सृष्टि का विकास हुआ—यह तात्पर्य है ॥ ६ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानिजज्ञिरे ।
छन्दाᳬंसिजज्ञिरेतस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥

उस पुरुष यज्ञ के बाद ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुए। साथ ही उस सर्वहुत यज्ञ पुरुष द्वारा विविध प्रकार के गायत्री आदि छन्द उत्पन्न हुए और यजुर्वेद (यज्ञात्मक मंत्र) भी उसी से प्रकट हुए ॥ ७ ॥

तस्मादश्श्वाऽअजायन्तयेकेचोभयादतः ।
गावोहजज्ञिरेतस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ॥ ८ ॥

उसी सर्वहुत (यज्ञपुरुष) से अश्व उत्पन्न हुए, साथ ही दाँतवाले (गर्दभ) आदि जीव भी पैदा हुए। उसी से गाएँ एवं भेंड-बकरियाँ भी क्रमशः उत्पन्न हुईं। क्योंकि पशुओं के विना यज्ञ[1] सम्पन्न नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

तंय्यज्ञम्बर्हिषिप्प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्ग्रतः ।
तेनदेवाऽअयजन्तसाध्याऽऋषयश्चये ॥ ९ ॥

सर्वप्रथम आविर्भूत हुए, उस यज्ञपुरुष को जो यज्ञ-यूप में बँधे हुए पशु तुल्य थे—सृष्टि के पूर्व प्रकटित प्रजापति, साध्य देवता एवं मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने प्रोक्षणादि संस्कारों द्वारा तदनुकूल (समयानुसार) मानसयज्ञ सम्पन्न किया। अर्थात् प्रणवाधिष्ठित उस यज्ञ पुरुष ने आत्म-यज्ञ (ज्ञान सम्पादन) किया ॥ ९ ॥

वह सुन्दर सर्वहुत यज्ञ त्रेतादि युगों में अश्वमेध के नाम से प्रचलित हुआ। उन दिनों भी अज्ञानात्म इन्द्रिय पशुओं की ही बलि होती थी। वर्तमान काल में उसका विकृत रूप हो गया है।

१. पशुयज्ञ से तात्पर्य उनके दुग्ध-दधि घृतादि से है, न कि पिण्ड-मांस से। उनसे काम लेना, उनका दान करना ही 'यज्ञ' कहलाता था। नरमेध-गोमेध तथा अश्वमेध का मूल तत्व यही था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ १० ॥

उस समय प्राणस्वरूप प्रजापति देवता तथा साध्यगण विराट् पुरुष को स्वसंकल्प द्वारा प्रकट होते देख, अत्यन्त प्रसन्न हुए। अतः यहाँ प्रश्नोत्तर द्वारा पूर्णब्रह्म परमात्मा के मुखादि अङ्गों का वर्णन करते हुए कहा 'उस विराट् पुरुष का मुख क्या था ? भुजा क्या थी ? पेट तथा पैर क्या थे ?' ॥ १० ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪ शूद्रो अजायत ॥ ११ ॥

इस विराट् पुरुष प्रजापति का मुख हुआ—'ब्राह्मण' जातिविशिष्ट, बाहु हुआ—'क्षत्रिय', जंघा या पेट हुआ—'वैश्य' और 'शूद्र' कहाया उनका चरण। अर्थात् उक्त ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को सर्वप्रथम ब्रह्मा ने इस प्रकार उत्पन्न करके प्रजाओं को यह आध्यात्मिक उपदेश दिया कि इस मानसिक महायज्ञ के चार मुख्य साधन हैं ज्ञान—(विद्याबल) बाहुबल (शक्ति) धन बल (लक्ष्मी) और क्रियाबल (सेवा) ॥ ११ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

जिस प्रकार पूर्वोक्त गौ, ब्राह्मणादि जीव, दध्यादिद्रव्य, ऋग्यजुःसामवेदों की उत्पत्ति विराट् पुरुष से हुई है, उसी प्रकार उसके मन से 'चन्द्रमा', चक्षु से 'सूर्य' और श्रोत्र से वायु (प्राण) उत्पन्न हुए हैं। साथ ही उसी महापुरुष के मुख[१] से अग्निदेव भी प्रकट हुए हैं। अर्थात् विराट् चेतनब्रह्म के अंश से ही

---

१. अयमेव ब्राह्मणादिचतुष्टयरूपः सायणमहीधरादीनामप्यभीष्ट इति कृष्णयजुःसंहितायाः सप्तमकाण्डे विस्पष्टीकृत ऊह्यः ।

१. उस विराट् ब्रह्म के मुख से ही गौ, अग्नि एवं ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है। इसी कारण यज्ञों में इन्हीं तीनों की विशेषता बतायी गयी है। अर्थात् गो-सेवा, अग्निपूजन एवं ब्राह्मणभोजन को महत्त्व दिया है। तस्मात् होम-जप-दान-व्रत महातप कहा गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देवता प्रत्यक्ष परिलक्षित होकर यह स्पष्ट सूचित करते हैं कि तत्तत् गोलक रूप में सूक्ष्म अधिष्ठातृ देव को ही पूर्वऋषियों ने 'देवता' शब्द से उद्घोषित किया है ॥ १२ ॥

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णोद्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ२ऽअकल्पयन् ॥ १३ ॥

प्रजापति (विराट् ब्रह्म) की नाभि से आकाश की उत्पत्ति, शिर से द्युलोक (स्वर्ग) की, श्रोत्र से दिशाओं की तथा पैरों से पृथिवी की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार भूतादि लोकों (ब्रह्माण्डों) की उत्पत्ति की कल्पना कर लेनी चाहिए। ऐसा ही श्रुति[१] कहती है, इसमें सृष्टि-विज्ञान का रहस्य निहित है ॥ १३ ॥

यत्पुरुषेणहविषादेवायज्ञमतन्वत ।
व्वसन्तोऽस्यासीदाज्यङ्ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥

सृष्टिकाल में सर्वप्रथम जब देवशरीर उत्पन्न हो गया, तब उन्होंने मानवी सृष्टि के लिये बाह्यद्रव्य के अभाव में मानसिक यज्ञ की कल्पना की। तदनुसार 'पुरुषाख्य' हविद्वारा उस मानसिक यज्ञ में इस प्रकार हवन किया। उस समय वसन्त ऋतु ही इस यज्ञ का घृत, ग्रीष्म ऋतु ही उसकी समिधाएँ तथा शरद् ऋतु ही हव्यपदार्थ माने गये थे।

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ।
देवायद्यज्ञन्तन्वानाऽअबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥ १५ ॥

उस संकल्पित मानसिक यज्ञ-वेदी के गायत्री आदि सातो छन्द परिधि के रूप में थे। ऐष्टिक आहवनीय की तीन, उत्तर वेदी की तीन तथा आदित्य एक मिलकर २१ समिधा मिलकर सात परिधियाँ तथा सप्तसागर—ये सब

---

१. 'तस्मादाकाशः (खं ब्रह्म), आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः रग्नेरापः। अपो भूमिरजायत।'

२. उवटाचार्य का मत है कि ये सभी आध्यात्मिक यज्ञरूपक हैं। उन्होंने आत्म-योग में परिधि के रूप में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन और बुद्धि को परिगणित किया है। साथ ही २१ समिधाओं में पंचमहाभूत, पंच तन्मात्राएँ,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के रूप में थीं। अथवा १२ मास, ५ ऋतु, ३ लोक तथा १ आदित्य मिलकर कुल २१ समिधाएँ हुई। क्योंकि भारतवर्ष में ही यज्ञ-यागादि होते हैं। इसलिए समुद्रों को परिधि कहा गया है ॥ १५ ॥

यज्ञेनयज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्म्माणिप्रथमान्न्यासन् ।
तेहनाकम्महिमानःसचन्तयत्रपूर्व्वेसाद्ध्याःसन्तिदेवाः ॥१६॥

प्रजापति प्राणस्वरूप उन सिद्ध देवताओं ने तथोक्त यज्ञों द्वारा उन विराट् यज्ञ-पुरुष को सन्तुष्ट किया। क्योंकि वे साक्षात् धर्म स्वरूप माने गये हैं। इसलिए साधक स्वर्गप्राप्ति के निमित्त यज्ञ करें, क्योंकि उसी पुरातन विराट् पुरुष की प्राप्ति के लिए सभी सिद्ध महात्मा योगिजन सर्वदा तत्पर रहते हैं। इस प्रकार इस पुरुषसूक्त में यज्ञ की महिमा गायी गयी है ॥ १६ ॥

अद्भ्यःसम्भृतःपृथिव्व्यैरसाच्चविश्वकर्म्मणःसमवर्त्तताग्ग्रे ।
तस्यत्त्वष्टाविदधद्रूपमेतितन्मर्त्यस्यदेवत्वमाजानमग्ग्रे ॥ १७ ॥

(अथोपस्थान मंत्राः) यहाँ पर पृथिवी से तात्पर्य पञ्चमहाभूतों से है। क्योंकि पंचभूतों से ही रस की परिपुष्टि होती है ('रसो वै आत्मा' श्रुतेः) वह रस विश्व कर्म सम्बन्धी (जगन्निर्माणेच्छापूर्वक) काल का सर्वप्रथम 'प्रेमरस' कहलाया। क्योंकि काल ही सब विश्व का मुख्य कारण है। उसी अपूर्व रस को धारण करते हुए 'आदित्य'[1] (सूर्यदेव) प्रतिदिन उदय होते हैं। अर्थात् पुरुष मेधयाजी के लिंग शरीर में पंचभूतों के साथ काल भी तुष्ट होते हैं क्योंकि कालदेव के तुष्ट (प्रसन्न) होने से ही वह उत्तम फल देने वाला कर्मदेव उत्पन्न होता है। 'वही कर्मदेव वास्तविक सृष्टिकर्त्ता होने के कारण सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए'—ऐसा समझना चाहिए। मानव सृष्टि के पूर्व ही आदित्य-मण्डलाकार सूर्यदेव

पंच ज्ञानेन्द्रिय एवं पंचकर्मेन्द्रिय तथा एक मन को बताया है। परन्तु महीधर और सायणाचार्य ने 'द्रव्ययज्ञ' ही निरूपण किया है।—'द्विजेन्द्र'।

१. पंचमहाभूतों के संवर्द्धक, काल, कर्म, गतिविधान के एकमात्र विधाता वह आदित्य (सूर्य) ही त्रिदेव स्वरूप हैं, जिनका प्रत्यक्षीकरण प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में होता रहता है। वही रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण रूप है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए। वे देव भी दो प्रकार के कहे गये—(१) सूर्यदेव तथा (२) आजान देव। उनमें भी कर्मदेव से आजानदेव[1] की श्रेष्ठता बतायी गयी है। वह आजानदेव 'सूर्यदेव' ही हैं, जिनकी स्तुति पूर्वकल्प में सर्वप्रथम की गयी है॥ १७॥

वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्यवर्ण्णन्तमसः परस्तात्।
तमेवविदित्त्वातिमृत्युमेतिनान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय॥ १८॥

मैं उस सर्वोत्तम सूर्यदेव (आदित्यस्वरूप) को भलीभांति जानता हूँ—जो संसार में अनुपम हैं—अद्वितीय हैं, जो अन्धकार से अत्यन्त दूर हैं अर्थात् जो अज्ञानान्धकार को दूर करके स्वतः ज्ञानमय प्रकाश को सर्वत्र सर्वदा देनेवाले हैं, जिनको जानकर साधक मृत्यु (काल) को जीत लेता है और आत्मरूप परमपुरुष को जानकर मुक्त हो जाता है। सच पूछिये तो इससे बढ़कर मुक्त होने का कोई दूसरा उपाय ही नहीं है; क्योंकि ध्यान योग द्वारा भी तो अन्त में सूर्यमण्डल को वेध कर ही मुक्ति होती है—यह श्रुति सम्मत है॥ १८॥

प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽअन्तरजायमानोबहुधाविजायते।
तस्ययोनिम्परिपश्यन्तिधीरास्तस्मिन्न्हतस्त्थुर्भुवनानि विश्श्वा॥१९॥

वह प्रजापति (विराट् पुरुष) समस्त प्राणियों के बाहर भीतर सर्वदा सर्वत्र स्थित रहता हुआ भी कार्य-कारण भाव से अनेक गर्भों में उत्पन्न होता है। अर्थात् माया प्रपंच के कारण राम-कृष्णादि के रूप में अवतार धारण करता है। ब्रह्मवादी लोग उस सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी पुरुष (ब्रह्म) को जानते हैं—देखते हैं और 'अहं ब्रह्माऽस्मि' के रूप में स्वयं अनुभव भी करते हैं। उसी परब्रह्म परमात्मा में समस्त विश्व व्याप्त रहता है॥ १९॥

योदेवेब्भ्यऽआतपतियोदेवानाम्पुरोहितः।
पूर्व्वोयोदेवेब्भ्योजातोनमोरुचायब्राह्मये॥ २०॥

जो प्रजापतिस्वरूप सूर्य सब देवताओं के लिए सर्वदा सर्वत्र प्रकाशित रहते हैं, जो देवताओं के अग्रणी हैं—पुरोहित के समान भविष्य में कल्याण-

---

१. "ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः ये शतकर्मदेवानामानन्दाः। स एक आजान देवानामानन्दः" इति श्रुतेः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारी हैं, जो सर्वप्रथम अग्निरूप में हव्य ग्रहण करते हैं तथा जो देवताओं से पहले जायमान हुए हैं—ऐसे 'सत्यं शिवं सुन्दरं' स्वरूप सूर्य भगवान् को बार-बार प्रणाम है ॥ २० ॥

रुचम्ब्राह्मञ्जनयन्तोदेवाऽअग्रेतदब्रुवन् ।
यस्त्वैवम्ब्राह्मणोव्विद्यात्तस्य देवाऽअसन्न्वशे ॥ २१ ॥

ऐसे सुन्दर ज्योतिस्वरूप आदित्य भगवान् को देखकर सब प्राणियों के इन्द्रिय देवताओं ने कहा—'हे आदित्य (सूर्य) ! जो ब्राह्मण आपको तथोक्त प्रकार से देदीप्यमान जानता है, और आपकी नित्य पूजा अर्चा करता हैं अथवा ध्यान द्वारा अपने अन्तःकरण में अनुभव करता है, वह संसार में सब से पूजित होता है, क्योंकि उस दिव्य पुरुष के ज्ञान से ब्रह्मादि देवता भी उस ज्ञानी भक्त की मनोकामना पूर्ण करते रहते हैं ॥ २१ ॥

श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रे·
पार्श्वेनक्षत्राणिरूपमश्विनौव्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाणसर्व्वलोकम्मऽइषाण ॥ २२ ॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

हे पुरुषोत्तम देव ! आप स्वतः प्रकाशस्वरूप हैं । शोभा और सम्पत्ति आप की दो पत्नियाँ हैं । रात और दिन वे दोनों आपके पार्श्ववर्ती हैं । अर्थात् अन्धकार एवं प्रकाशस्वरूप अज्ञान एवं ज्ञान के एकमात्र कारण आप ही हैं । पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष के सभी पदार्थ आप से प्रकाश पाते हैं । नक्षत्र मण्डल आप से ही देदीप्यमान हैं । तभी तो आपके सामने वे चमक नहीं पाते । आपकी ही इच्छा से सबकी इच्छाएँ पूरी होती हैं । ऐसे आप की उपासना करनेवाले साधक जन को ही ब्रह्मप्राप्ति सम्भव है । इसलिये मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझ पर ऐसी कृपादृष्टि करें, जिससे मैं सर्वत्र आपका ही अनुभव करूँ, अर्थात् सब कुछ मुझे मनोऽनुकूल मिलता रहे और अन्त में मैं अपने से अभिन्न आपको समझता हुआ मुक्त हो जाऊँ ॥ २२ ॥

द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ तृतीयोऽध्यायः

हरिः ॐ ॥ आशुःशिशानोवृषभोनभीमोघनाघनःक्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोनिमिषऽएकवीरः शतᳪसेनाऽअजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

प्रसंग— निम्नलिखित १२ मंत्रों में सेनानायक अथवा अवतारिक पुरुषों एवं इन्द्र के गुणों का वर्णन किया गया है। अतः शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से इन मंत्रों का पाठ करना विशेष उपयोगी है। अन्त में समस्त व्याधियों की अधिष्ठात्री देवता "अप्वा" द्वारा शत्रुओं के विनाश करने का संकेत किया गया है। आध्यात्मिक पक्ष में—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर तथा अहंकार रूपी (षड्रिपु विजय) शत्रुओं पर विजय कामना की गयी है।

शीघ्र ही शत्रुओं पर विजय करनेवाले, धर्म के समान शासक, भीम के समान भयानक, देव, दानव एवं मानवों के संचालक अद्वितीय वीर वज्रधारी इन्द्र आलस्यरहित होकर सैकड़ों शत्रुओं की सेनाओं का एक साथ ही क्षणभर में विनाश करके सर्वत्र विजयी हुए ॥ १ ॥

सङ्क्रन्दनेनानिमिषेणजिष्णुनायुत्कारेण दुश्च्यवनेनधृष्णुना ।
तदिन्द्रेणजयततत्सहध्वंयुधोनरऽइषुहस्तेनवृष्णा ॥ २ ॥

हे समरशील पुरुषो ! युद्ध के लिये निर्भीक शब्द (आह्वान) करनेवाले, धनुर्बाणधारी विजय कामनाओं के विमल वारि बरसानेवाले, इन्द्र के प्रभाव से उस शत्रु सेना का शीघ्र संहार करो। साथ ही शत्रुओं को वश में करने वाले मन्त्रों[1] द्वारा उन्हें विमोहित कर डालो। तुम लोग भी इन्द्र के समान आलस्य-रहित होकर जयशील एवं शत्रुदमनकारी योद्धा बनो ॥ २ ॥

सऽइषुहस्तैःसनिषङ्गिभिर्वशीसᳪस्रष्टासयुधऽइन्द्रोगणेन ।
सᳪसृष्टजित्सोमपाबाहुशर्द्ध्युग्रधन्वाप्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

---

१. युद्ध में विजय प्राप्त करने का यह अमोघ मंत्र है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो इन्द्र जितेन्द्रिय है, शत्रुओं को वश में करनेवाला, जनताप्रिय, स्वतन्त्र तथा दैत्यों पर विजय पानेवाला है, जो प्रतिद्वन्द्वियों से डटकर सामना करने वाला तथा यजमानों के यज्ञों में सोमरस का पान करते हुए, यज्ञांश का ग्रहण करने में सर्वप्रथम है, जो किसी दूसरे की सहायता की उपेक्षा करनेवाला, अचूक बाण-प्रहार करनेवाला तथा देवताओं (इन्द्रियों) का राजा है, वह उत्कृष्ट धनुर्धारी एवं वज्रधारी बलशाली इन्द्र हमारी सर्वदा सर्वत्र रक्षा करे ॥३॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ२ऽअपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेद्ध्यविता रथानाम् ॥४॥

हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! आप रथद्वारा परिगमन करें; क्योंकि आप राक्षसों का वध करनेवाले हैं। इसलिये समर में शत्रुओं का कष्ट नष्ट करते हुए अथवा सब विघ्नों को दूर करते हुए, दैत्यों की सारी सेनाओं को कुचलते हुए किंवा हिंसक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए आप हमारे रथों की सुरक्षा करें ॥४॥

(यहां पर 'बृहस्पति' शब्द का अर्थ है—शब्दशास्त्र (व्याकरण) के आदिकर्त्ता वाणीपति 'इन्द्र' अथवा बृहतां प्रधानदेवानां पतिः सुरपतिस्तत्सम्बुद्धौ हे बृहस्पते ! हे इन्द्रदेव !)

बलविज्ञायस्स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमानऽउग्रः ।
अभिवीरोऽअभिसत्त्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! आप सब प्राणियों के बल (शक्ति) को जाननेवाले हैं, आप स्थविर (अत्यन्त पुरातन) एवं सबके प्रशासक हैं, महाबली तथा पराक्रमी हैं, आप धन-धान्य-सम्पन्न और युद्धस्थल में शत्रुओं को जीतने वाले हैं। सर्वत्र शूर-वीर सैनिकों से युक्त तथा सेवकों से स्तुत्य हैं। इसलिये शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए इस जयशील रथपर आप शीघ्र ही विराजिये ॥ ५ ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाताऽअनुवीरयद्ध्वमिन्द्रꣳ सखायोऽअनुसꣳरभद्ध्वम् ॥६॥

हे देवयोनि में एक साथ पैदा होनेवाले देवताओ ! वृष्टि के लिये मेघों को भेजनेवाले तथा असुरलोक-संहारी, वज्रधारी इन्द्र को—जो संग्राम में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शत्रुओं को मारनेवाले हैं तथा जो देववाणी (संस्कृत) के मर्मज्ञ विद्वान् हैं—इनके वीर कर्म में प्रोत्साहन देवें। अर्थात् युद्ध में शीघ्रता करने वालों के प्रति आप लोग भी शीघ्रता दिखावें ॥ ६ ॥

अभिगोत्राणि सहसागाहमानोदयोव्वीरःशतमन्न्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनःपृतनाषाडयुद्ध्योस्म्माकꣳसेनाऽअवतुप्प्रयुत्सु ॥ ७ ॥

जो इन्द्र शत्रुओं के लिये अति निष्ठुर तथा क्रोधयुक्त हैं, जिनको कोई पदच्युत नहीं कर सकता, जो संग्राम में सर्वदा अजेय हैं, जिनसे कोई युद्ध करने का साहस नहीं रखता, जो शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञ करनेवाले हैं, जिनकी त्रिभुवन में कोई बराबरी नहीं कर सकता, जो दैत्यवंश तथा मेघसमूह को एक साथ ही विलोडित करते हैं, ऐसे इन्द्रभगवान् हमारी सेनाओं की रक्षा करें ॥ ७ ॥

इन्द्रऽआसान्नेताबृहस्प्पतिर्द्दक्षिणायज्ञःपुरऽएतुसोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनाञ्जयन्तीनाम्मरुतोयन्त्वग्ग्रम् ॥ ८ ॥

हमारे सहायतार्थ आयी हुई सेनाओं की व्यूहरचना के अधिनायक 'इन्द्र' हों तथा 'बृहस्पति' भी आगे-आगे चलें। 'विष्णु' दक्षिणायज्ञ की रक्षा करें तथा 'चन्द्रमा' सोमरस का पान करें। साथ ही शत्रुओं पर विजय करनेवाली हमारी सेनाओं के आगे 'मरुद्गण' (वायुदेवता) चलें, यही हमारी कामना है ॥८॥

[1]इन्द्रस्यव्वृष्ण्णोव्वरुणस्यराज्ञऽआदित्यानाम्मरुताꣳ शर्द्धऽउग्ग्रम् ।
महामनसाम्भुवनच्च्यवानाङ्घोषोदेवानाञ्जयतामुदस्त्थात् ॥ ९ ॥

महामना इन्द्र, वरुण, कुबेर आदित्य नामक मरुद्गणों की चतुरङ्गिणी सेना सुरक्षित होकर विजयिनी बने। साथ ही समस्त समरस्थित देवताओं की बल-प्रकाशिका जयध्वनि सर्वथा गुञ्जित रहे, क्योंकि वे प्रधान देवता ही संसार के संचालक, संरक्षक एवं संहारक हैं ॥ ९ ॥

---

१. युद्ध में विजय पाने के लिये यह मंत्र महा सिद्ध है। अतः प्रस्थान करते समय अवश्य इसको स्मरण करना चाहिए।—(द्विजेन्द्र)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उद्धंर्षयमघवन्नायुधान्युत्सत्त्वनाम्मामकानाम्मनांऽसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनांवाजिनान्युद्रथानाञ्जयतांऽयन्तुघोषाः ॥ १० ॥

हे वृत्रहन् इन्द्र ! आप अपने आयुधों को भलीभाँति सँभारें और हमारे सहयोगी प्राणियों को बल प्रदान कर हर्षित करें। हमारे वाहनों, रथों में शीघ्र चलने की शक्ति देकर उन्हें हर्षध्वनि द्वारा प्रोत्साहित करें। अर्थात् हमें रण में विजयी बनावें ॥ १० ॥

अस्माकमिन्द्रःसमृतेषुध्वजेष्वस्माकंयाऽइषवस्ताजयन्तु ।
अस्माकंवीराऽउत्तरेऽभवन्त्वस्माँ २ऽ उदेवाऽअवताहवेषु[1] ॥११॥

हे देवताओ ! जब शत्रुओं की सेनाओं का हमारी सेना से मुकाबला हो अर्थात् दोनों पताकाएँ एकत्र फहराने लगें, तब इन्द्र भगवान् हमारी रक्षा करें। साथ ही हमारे चलाये गये बाण शत्रु-सेना का संहार करके रण में विजय प्राप्त करें और शत्रु सैनिकों से हमारे सैनिक सर्वदा प्रबल रहें, जिससे हम लोग सर्वत्र विजयी रहें ॥ ११ ॥

अमीषाञ्चित्तम्प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वेपरेहि ।
अभिप्रेहिनिर्दहहृत्सुशोकैरन्धेनामित्रास्तमसासचन्ताम् ॥ १२ ॥

व्याधियों की अधिष्ठातृ देवते हे अप्ये ! हमारी शत्रु-सेनाओं के हृदय में प्रवेश करके तुम उन्हें सन्ताप देती हुई संक्षुब्ध कर डालो तथा उन्हें अज्ञानान्धकार से विमोहित कर दो। अर्थात् वे शत्रु काम-क्रोध-मद-मोह-मत्सरादि के चक्कर में ऐसे पड़ जांय, जिससे वे तन-धन से क्षीण होकर सर्वदा के लिए पराजित हो जायँ ॥ १२ ॥

अवसृष्टापरापतशरव्येब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्वमामीषाङ्कञ्चनोच्छिषः ॥ १३ ॥

---

१. आहवेषु=युद्धेष्वित्यर्थः "संग्रामाभ्यागमाहवाः" इतिकोशविधानात् । नतु हवेषु इति दिक् ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे मन्त्राभिषिक्त तीक्ष्ण बाण (ब्रह्मास्त्र) हमारे हाथ से छूटे हुए तुम शत्रुओं पर इस प्रकार गिरो, जिससे एक भी शत्रु बच न सके, अर्थात् सभी शत्रुओं को मार डालो ॥ १३ ॥

प्रेताजयंतानरऽइन्द्रोवःशर्म्मयच्छतु ।
उग्राव्वः सन्तुबाहवोनाधृष्ष्याय्यथासंथ ॥ १४ ॥

हे मनुष्यो ! (हमारे सैनिको !) तुम सब शत्रु-सेनाओं पर शीघ्र आक्रमण करो और विजयी होओ । इस प्रकार जयशील तुम्हें इन्द्र सुख प्रदान करें । तुम्हारी भुजाएँ हृष्ट-पुष्ट हों, जिससे कोई भी शत्रु तुम लोगों का अपमान न कर सके ॥ १४ ॥

असौयासेना मरुतःपरेषामब्भ्यैतिनऽओजसास्पर्द्धमाना ।
ताङ्गूहततमसापव्व्रतेनयथामीऽअन्न्योऽअन्न्यन्नजानन् ॥ १५ ॥

हे पवन देव ! यह शत्रुओं की सेना—जो अभिमान वश हमारे ऊपर आक्रमण कर रही है, उसे ऐसे अकर्मण्य-अन्धकार में आच्छादित कर दो, जिससे वह स्वयं आपस में ही एक दूसरे को न पहचान कर जूझ मरे और भयंकर तूफान के झकझोर में फँसकर अपने आप नष्ट हो जाय ॥ १५ ॥

यत्र्त्र बाणाः सम्पतन्ति कुमाराव्विशिखाऽइव ।
तन्नऽइन्द्रोबृहस्प्पतिरदितिःशर्म्मयच्छतुव्विश्श्वाहाशर्म्मयच्छतु ॥१६॥

जिस रणभूमि में शत्रु के बाण इस प्रकार व्यर्थ ही इधर-उधर गिरते हैं, जैसे छोटे-छोटे अबोध बालक चलते समय धरती पर गिरते-पड़ते हों, उस युद्धस्थल में सब मन्त्रों के रक्षक एवं संचालक इन्द्र, बृहस्पति या देवमाता अदिति हमलोगों की रक्षा करें और हमारे शत्रुओं का संहार कर डालें, जिससे सर्वदा हम लोगों का कल्याण होवे ॥ १६ ॥

मर्म्माणि तेव्वर्म्मणाच्छादयामिसोमस्त्वाराजामृतेनानुवस्ताम् ।
उरोर्व्वरीयोव्वरुणस्तेकृणोतुजयन्तन्त्वानुदेवामदन्तु ॥ १७ ॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे याजक नृपते ! मैं मंत्राभिषिक्त कवच से आपके मर्मस्थल (हृदय) की रक्षा करता हूँ। चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणों से आपको आच्छादित करें तथा वरुण देवता आप के कवच को अत्यन्त उत्तम एवं अक्षुण्ण बनावें। साथही समस्त देवगण भी आपको विजयी होते देख, अत्यन्त प्रसन्न होवें—यही हमारा शुभाशीर्वाद है ॥ १७ ॥

इति 'रुद्रप्रिया' भाषाटीका सहित रुद्राष्टाध्यायी का
तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ चतुर्थोऽध्यायः

हरिः ॐ ॥ विभ्राड्बृहत्पिबतु सोम्यम्मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।
वातजूतो योऽअभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति ॥ १ ॥

जो सूर्य[1] पवन से प्रेरित[2] होकर स्वयं प्रकाशमान रहता है और समस्त जगत् को प्रकाशित करता हुआ प्रजाओं की रक्षा करता एवं सोमरस द्वारा परिपुष्ट करता है। साथ ही चन्द्रमा तथा नक्षत्रादि ग्रहों में—ज्योतिरूप से विविध[3] रूपों में—विराजमान रहता है, वह सूर्य यजमानों (नृपतियों) की आयुवृद्धि करें ॥ १ ॥

उदु त्यञ्जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥

सूर्य के सातो किरण रूपी अश्व सप्तजिह्व अग्निदेव के समान सम्पूर्ण जगत् के कार्य-सम्पादन में लगे रहते हैं। अर्थात् जिस परमात्मा ने सूर्य को भी प्रकाशित किया है, उस ब्रह्मज्योतिः स्वरूप दर्शनीय सूर्य देव की उपासना विज्ञ पुरुष सर्वदा करते हैं ॥ २ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ २ ऽअनु त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३ ॥

हे वरुणदेव ! सब प्रकार से पवित्र करनेवाले अपने दिव्य नेत्रों से आप समस्त प्राणियों की आत्मा को जैसे देखते हैं, वैसे ही हम लोगों (याजकों) को भी देखने की अनुकम्पा करें। अर्थात् जिस प्रकार हमारा कल्याण हो, वह शीघ्र करिये ॥ ३ ॥

---

१. विशेषेण भ्राजते दीप्यते इति विभ्राट् = सूर्यः ।

२. राशिचक्रस्य वायुप्रेर्यत्वात् सूर्यस्यापि तत्प्रेर्यत्वमिति भावः ।

३. शीत, उष्ण, वृष्टि प्रदान द्वारा पुष्टि–तुष्टि करता हुआ सूर्यमण्डल में परिभ्रमण करें ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दैव्यावध्वर्यूऽआगतᳪंरथेनसूर्य्यत्वचा ।
मद्ध्वायज्ञᳪंसमञ्जाथे । तम्प्रत्नथाऽयंव्वेनश्चित्रन्देवानाम् ॥४॥

हे अश्विनीकुमार ! सूर्य के समान शीघ्रगामी तेजस्वी रथद्वारा आप यहाँ पधारिये और मधुर हवियों (पुरोडाश दधि आदि) द्वारा सींचते हुए हमारे इस यज्ञ की रक्षा करिये तथा यज्ञसामग्रियों की वृद्धि करिये ॥ ४ ॥

[1]तम्प्रत्नथापूर्वथाव्विश्वथेमथाज्ज्येष्ठतातिम्बर्हिषदᳪंस्वर्व्विदम् ।
प्रतीचीनंव्वृजनन्दोहसेधुनिमाशुञ्जयन्तमनुयासुवर्द्धसे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! पूर्व यजमानों की भाँति हमारे आलस्य एवं अश्रद्धा आदि दोषों को आप शीघ्र विनाश कर दें; क्योंकि आप ही शत्रुओं को प्रकम्पित करनेवाले तथा उन्मूलन करनेवाले हैं। हे देव ! आप सोमरस का पान करके यजमानों का कल्याण करने में सर्वथा निरत रहते हैं। इसलिये देवताओं में श्रेष्ठ एवं यज्ञप्रिय आप की हम स्तुति (प्रार्थना) करते हैं ! अर्थात् प्राचीन भृगु आदि मुनियों, पूर्वपितरों, अतीत यजमानों तथा वर्तमान यज्ञकर्ताओं ने भी आपकी स्तुति की है। अत एव हमलोग भी यहाँ प्रार्थना करते हैं कि आप शत्रुओं पर विजय देते हुए हमारी यज्ञ-सामग्रियों की भी वृद्धि करें ॥ ५ ॥

अयंव्वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भाज्ज्योतिर्जरायूरजसोव्विमाने ।
इममपाᳪंसङ्गमेसूर्य्यस्यशिशुन्नविप्प्रामतिभीरिहन्ति ॥ ६ ॥

यह अद्वितीय शोभा-सम्पन्न चन्द्रमा सूर्य-रश्मियों द्वारा समुद्र से जल खींचकर आकाश में मेघ रूप से भूतल पर मधुर एवं स्वादिष्ट जल बरसाता है। अर्थात् यथासमय मेघरूप गर्भ के पिता सूर्य और द्युलोक माता तथा ज्योतिर्मय जरायु बनकर वृष्टि को प्रेरित करते हैं। अतः विद्वज्जन इस अपूर्व संगममय प्रतीक के विषय में सूर्यरूपी पिता की पुत्र के समान स्तुति करते हैं ॥६॥

---

१. यहां से ये तीनों मन्त्र (तम्प्रत्नथा, अयंवेन० तथा चित्रन्देवानाम्) प्रतीक स्वरूप हैं। देखिये—यजुर्वेद के ७ वें अध्याय के १२, १६, ४३ मंत्र।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चि॒त्रन्दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्म्मि॒त्रस्य॒ व्वरु॑णस्या॒ग्नेः ।
आप्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वीऽअ॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ सूर्य॑ऽआ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च ॥७॥

बड़े विस्मय की बात है कि समस्त तेजों का समूह स्वरूप वह सूर्य इन्द्र, वरुण तथा अग्नि—इन तीनों देवताओं का नेत्र रूप होकर अपने उदय से पृथ्वी एवं आकाश को प्रकाशित करता है। अर्थात् तीनों लोकों में अपने प्रकाश से अन्धकार को दूर कर देता है और चराचर जगत् को जीवन प्रदान करता है। क्योंकि सूर्यदेव ही समस्त ब्रह्माण्ड की आत्मा हैं। इसलिये हमारे दिये हुए हव्य पदार्थ को वे भलीभाँति स्वीकार करें ॥ ७ ॥

आ न॒ऽइडा॑भिर्व्वि॒दथे॑ सुश॒स्ति व्वि॒श्वान॑रः सवि॒ता दे॒वऽए॑तु ।
अपि॒ यथा॑ युवानो॒ मत्स॑था नो॒ व्विश्वं॒ जग॑दभिपि॒त्वे म॑नी॒षा ॥ ८ ॥

संसार के सभी प्राणियों के प्रेरक एवं हितैषी सूर्यदेव हमारे इस प्रशंसित अन्नमय यज्ञस्थल में सहर्ष पधारें। साथही हे निर्जर देवताओ ! आप लोग भी हमारे प्रदत्त हव्य पदार्थों से उसी प्रकार तृप्त हों, जिस प्रकार सभी प्राणी भोजन से तृप्त होते हैं। अर्थात् विश्व-हितैषी सविता देवता नियमतः संसार में उदय लेकर जैसे समस्त प्राणियों को तृप्त करते हैं, वे हमारे परिवार को भी सद्बुद्धि की प्रेरणा देकर तृप्त करें ॥ ८ ॥

यद॒द्य कच्च॑ व्वृत्रहन्नु॒दगा॑ऽअ॒भि सू॑र्य्य सर्व्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ व्वशे॑ ॥ ९ ॥

हे वृत्रहन्[1] (अन्धकारनाशक) ! गतिशील[2] सूर्यदेव ! आज आप जहाँ कहीं उदय ले रहे हैं, वहाँ सर्वत्र सभी जीव आपके अधीन हैं; क्योंकि सूर्याधीन ही समस्त स्थावर-जंगम जगत् होता है। सुतराम् आपके उदित होने पर ही सभी प्राणी स्वकर्म करते तथा हवन-आदि नित्यकर्म में प्रवृत्त होते हैं ॥ ९ ॥

---

१. वृत्र = तम अथवा वृत्रासुर। यह मंत्र इन्द्रपक्ष में भी प्रयुक्त होता है। सूर्य १ निमिष में ४४०० योजन मार्ग तय करते हैं। तथा हि—

'योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने। एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते।'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तरणिर्व्विश्श्वदर्शतोज्ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य ।
व्विश्श्वमाभासि रोचनम् ॥ १० ॥

हे सूर्यदेव ! आप निरन्तर गतिशील एवं अपने उपासकों की व्याधियाँ हरने वाले हैं। समस्त प्राणियों के लिये दर्शनीय तथा अन्तरिक्ष के सभी दृश्यमान ग्रह-नक्षत्रों के प्रकाशक हैं। अर्थात् हे परमात्मन् ! आप ही समस्त जगत् के प्रेरक एवं संसार-सागर से पार करनेवाले हैं, हे अन्तर्यामी विभो ! मुमुक्षुजन आपको ही ध्यानावस्थित हो, अपने अन्तःकरण में देदीप्यमान देखकर कृतार्थ होते हैं। आप ही के लिये श्रुति भी कहती है—'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्'। इसलिये हे ज्योतिष्मन् ! आपको मेरा वार-वार प्रणाम है ॥ १० ॥

तत्सूर्य्यस्यदेवत्वन्तन्महित्त्वम्मद्ध्याकर्त्तोर्व्विततꣳसञ्जभार ।
यदेदयुक्तहरितः सधस्त्थादाद्रात्रीव्वासस्तनुतेसिमस्म्मै ॥११॥

समस्त जगत् के प्रेरक सूर्यदेव का देवत्व एवं महत्त्व यही है, जो पृथ्वी से लेकर आकाश तक समस्त अन्तरिक्ष (ब्रह्माण्ड) में अपनी किरणों को फैलाते एवं संहरण करते रहते हैं। अर्थात् हरिदश्वरूपी अपनी सोनहली किरणों से प्रातःकाल में 'दिन' तथा रक्तमयी किरणों से 'रात' का निर्माण करते हुए वे सविता देवता ही समस्त प्राणियों को कार्य करने एवं विश्राम करने की प्रेरणा देते हैं। सुतराम् सूर्य ही प्रातःकाल में उषारानी के भव्य भाल का सिन्दूर-विन्दु एवं रजनी-रानी के सीमन्त-प्रदेश को आच्छादित करनेवाले वस्त्राञ्चल बनकर दिव्य दिगङ्गनाओं से निरन्तर रमण करते रहते हैं ॥ ११ ॥

तन्न्मित्रस्यव्वरुणस्याभिचक्षेसूर्य्योरूपङ्कृणुतेद्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्न्यद्रुशदस्यपाजः कृष्णमन्न्यद्धरितꣳसम्भरन्ति ॥ १२ ॥

सूर्य ही द्युलोक (आकाश) में मित्रावरुण के रूप में अपना दो रूप धारण करते हैं। अर्थात् मित्ररूप से सज्जनों को देखते तथा वरुणरूप से दुर्जनों को देखते हैं। उन दोनों रूपों में एक शुक्ल दीप्यमान सच्चिदानन्द घनस्वरूप निर्गुण है, दूसरा दिक्-देश-कालरूप से आच्छादित कृष्ण (हरित) वर्ण का द्वैतलक्षण वाला सगुण है। अर्थात् द्वैतरूप इन्द्रियग्राह्य है और अद्वैतरूप शुद्ध चैतन्य होने के कारण इन्द्रियातीत है। तात्पर्य यह है कि वे ब्रह्मरूप सूर्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शुक्ल (उत्तरायण) तथा कृष्ण (दक्षिणायन) भेद से दिन एवं रात्रि के समान है। सुतराम्—अद्वैतसूर्य (उत्तरायण काल) में पुण्यात्माओं को मित्ररूप से तथा द्वैतसूर्य (दक्षिणायन) में पापात्माओं को वरुणदेवता के रूप से अनुशासित करते हैं। फलतः शुद्ध-चैतन्य-ब्रह्म-रूप सूर्य के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूप स्वयं सिद्ध हैं ॥ १२ ॥

बण्महाँ२ऽअंसि सूर्य्यबडादित्यमहाँ२ऽअंसि ।
महस्तेंसतोमहिमापनस्यतेद्धादेवमहाँ २ऽअंसि ॥१३॥

हे आदित्य, सूर्यदेवता ! वास्तव में आप ही [1]बट्रूप अर्थात् सबसे बढ़कर हैं; क्योंकि सभी आपका यशोगान करते हैं। ब्रह्माण्ड में आप ही सर्वश्रेष्ठ प्रत्यक्ष [2]पूज्य देवता हैं, जो बाहर-भीतर सर्वत्र प्रकाश देते हैं। इसलिये आपके विषय में जो कुछ कहा जाय, थोड़ा ही है; क्योंकि आप संसार में सर्वश्रेष्ठ एवं महान्[3] तेजस्वी हैं ॥ १३ ॥

बट्सूर्य्यश्रवंसामहाँ२ऽअंसिसत्रादेवमहाँ२ऽअंसि ।
मह्नादेवानामसुर्य्यः पुरोहितो व्विभुज्ज्योतिरदाभ्यम् ॥१४॥

हे सूर्य ! सचमुच आप यशोधन हैं, महान् तेजस्वी एवं ऐश्वर्यवान् भी हैं। सब देवताओं में अग्रगण्य, पूज्य एवं लोक-हितैषी हैं। सबको प्रकाश एवं जीवन दान करनेवाले आप ही हैं। आप अपने पराक्रम से त्रिलोक-पूज्य हैं; क्योंकि सर्वप्रथम सूर्यार्घ्य देने पर ही अन्य देवताओं की पूजा करने के अधिकारी प्राणी समझे जाते हैं। इसलिये सर्वव्यापक होने के कारण आप सब के पुरोहित[4] प्रथम पूज्य एवं हितैषी कहलाते हैं ॥ १४ ॥

श्रायन्तऽइवसूर्य्यं विश्श्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
व्वसूनि जाते जनमानऽओजसाप्प्रतिभागन्नदीधिम ॥ १५ ॥

जैसे सूर्य की किरणें सूर्य के अधीन होकर पृथ्वी से जल खींचती हैं और

१. यहां पर 'बट्' शब्द 'सत्य' के अर्थ में आया है।
२. पनस्यते = सर्वप्राणिभिः स्तूयते पूज्यते वेत्यर्थः ।
३. 'महान् असि' इत्यत्र आदरार्थे न पुनरुक्तिदोषः ।
४. पुरः अग्रे हितमिच्छतीति पुरोहितः, प्रथमपूज्यः परमहितैषी चेति भावः ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मेघ के रूप में पुनः उसे बरसाती हैं, जिससे इन्द्र राजा धनधान्य-परिपूर्ण होकर आनन्द करते हैं, वैसे ही हमलोग भी हे परमात्मन्! आपकी कृपा के बल पर अपने पुत्र-पौत्रों आदि को अपना धन-वैभव देकर सुखी रहें। अर्थात् सूर्य की कृपा से ही इन्द्रादि सभी देव अपने कार्य में सफल होते हैं। सुतराम् हमलोग भी वर्तमान तथा भविष्य काल में इन्द्र के समान ही अपनी प्रजा पुत्र-पौत्रों में अपने धन-धान्यों को स्थापित कराएँ—यह प्रार्थना है ॥ १५ ॥

अद्यादेवाऽउदितासूर्य्यस्यनिरꣳहसःपिपृतानिरवद्यात् ।
तन्नोमित्रोवरुणोमामहन्तामदितिःसिन्धुःपृथिवीऽउतद्यौः ॥ १६ ॥

हे देदीप्यमान सूर्य-रश्मियों में स्थित देवताओ! आज हम सबों को सूर्योदय-कालीन किरणें सभी पापों एवं कलङ्कों से मुक्त करें। साथही हमारी इस प्रार्थना का समर्थन मित्र, वरुणदेवता, देवजननी अदिति तथा समुद्र, नदियाँ, पृथ्वी एवं स्वर्ग आदि सभी करें। अर्थात् तथोक्त सभी देवता हमारी रक्षा करें ॥ १६ ॥

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेनसवितारथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ १७ ॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

सब प्राणियों के प्रेरक सूर्यदेवता सुवर्णमय रथ पर बैठकर दिन में प्रकाश तथा रात में अन्धकार प्रदान करते हुए, अन्तरिक्ष (आकाश) में सर्वदा सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं। वे हम लोगों के पाप-पुण्यों का निरीक्षण करते हुए समस्त भुवन में आगमन करते रहते हैं। इसलिये उन सविता देवता की उपासना करना हम सबों का परम कर्त्तव्य है ॥ १७ ॥

इति 'रुद्रप्रिया' भाषाटीका सहित रुद्राष्टाध्यायी का
चतुर्थ अध्याय समाप्त ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रसङ्ग—इस अध्याय में परमात्मा के सगुण एवं निर्गुण रूप का विशद वर्णन करते हुए उन्हें प्रणाम किया गया है। इसमें रुद्र भगवान् (शिव) का कल्याणमय शरीर 'कैलास' बताया गया है, जो परम मनोहर है। अतः रुद्रदेव की उपासना करनी चाहिये। इसमें विराट् ब्रह्म का वर्णन, आध्यात्मिक तत्त्व का निरूपण रूपकातिशयोक्तिपूर्वक बड़े ही विचित्र ढंग से किया गया है।

हरिः॑ओम् ॥ ॐ नम॑स्तेरुद्रमन्यवऽउतोतऽइषवेनमः॑ ।
बाहुभ्या॑मुत ते नमः॑ ॥ १ ॥

हे रुद्रदेव[1]! आपके क्रोध के लिये मेरा प्रणाम है, आपके बाणों तथा दोनों भुजाओं को भी वार-वार मेरा नमस्कार है। इसलिये हे भगवन्! आपका क्रोध, तथा वाणधारी दोनों हाथ शत्रुओं पर उठें, उनका नाश करें और हमारे लिये शान्ति प्रदान करें ॥ १ ॥

याते॑ रुद्रशिवातनूरघोरापा॑पकाशिनी ।
तया॑नस्तन्वाशन्त॑मयागिरि॑शन्ताभिचा॑कशीहि ॥ २ ॥

हे गिरिशन्त[2]! (सर्वज्ञ शिव!) आपका जो रुद्र (भयंकर) एवं शिव (शान्त कल्याणकारी) तथा अघोर (सौम्य) एवं पापनाशक शरीर है, अर्थात् पापियों के लिये घोर एवं पुण्यात्माओं के लिये अघोर स्वरूप है, उस शान्तमय

---

१. 'रु' दुःखं रोदनं द्रावयतीति 'रुद्रः'। किंवा रुद्रं क्रोधं उपशामयतीति रुद्रः। अत्र रवणं रुत् ज्ञानं भावे क्विप् तुगागमे कृते रुत् ज्ञानं एतीति (ददाति) इति रुद्रः = मोहनाशकः परमात्मा। तत्सम्बुद्धौ 'हे रुद्र!' इति बोध्यम्।

२. गिरौ शेते गिरिशः, अयति सर्वत्र गच्छति इति अन्तः = सर्वज्ञः, (अय गतौ, भजनार्थे शब्दे कर्त्तरि 'क्तः') —गिरिशश्चासौ अन्तश्चेति तथोक्तस्तत् सम्बुद्धौ हे गिरिशन्त! हे सर्वज्ञ! इति भावः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शरीर से किंवा अपनी दयार्द्र-दृष्टि से आप हमें (भक्तों को) देखने की कृपा करें—यही प्रार्थना है ॥ २ ॥

यामिषुङ्गिरिशन्तहस्तेबिभर्ष्यस्तवे ।
शिवाङ्गिरित्रताङ्कुरुमाहिंसीःपुरुषञ्जगत् ॥ ३ ॥

हे गिरिशन्त ! (रुद्रदेव !) अथवा वाणी, पर्वत एवं मेघों में रहकर कल्याण करने वाले गिरित्र[1] प्रभो !! आप शत्रुओं के नाश किंवा प्रलय करनेवाले अपने हाथों में धनुष-बाण धारण करते हैं। अतः उस बाण को हम भक्तों के लिये कल्याणकारी बनावें। साथही पुत्र-पौत्र एवं अश्व-गौ आदिकों को भी अकाल में न मारें। सुतराम् समस्त जगत् की रक्षा करें ॥ ३ ॥

शिवेनव्वचसात्वागिरिशाच्छाव्वदामसि ।
यथानःसर्व्वमिज्जगदयक्ष्मꣳसुमनाऽअसत् ॥ ४ ॥

हे गिरिश[2] (शंकर) ! हमलोग यहाँ मंगलमय शब्दों में आपकी स्तुति करते हैं। इसलिये इस स्थावर-जंगम जगत् का जैसे कल्याण हो, किंवा मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जैसे नीरोग (स्वस्थ) रहें, वैसी कृपा आप करें—यही प्रार्थना है ॥ ४ ॥

[नोट—यहाँ पर इस मंत्र का आध्यात्मिक अर्थ भी इस प्रकार है—जो महौषधियों से युक्त कैलास पर्वत पर रहता है, किं वा जो मेघ के भीतर स्थित होकर विश्वहित का अधिष्ठातृ देव है, उसको 'गिरिश' कहते हैं। इस प्रकार रुद्रदेव सर्वत्र विद्यमान होकर जगत् को नीरोग एवं मंगलमय बनाते हैं—ऐसा ज्ञानी पुरुषों का कथन है।]

अद्ध्यवोचदधिवक्ता प्प्रथमो दैव्व्यो भिषक् ।
अहींश्चसर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्चयातुधान्न्योधराचीःपरासुव ॥५॥

हे रुद्रदेव ! आप अधिवक्ता (निगमागम पर प्रवचन करनेवाले)[3] मन्त्री हैं,

---

१. गिरौ त्रायते इति गिरित्रस्तत्सम्बुद्धौ हे गिरित्र ! शिव !!

२. गिरिशः = शिवः। गिरौ कैलासे वाण्यां वा शेते गिरिशस्तत्सम्बुद्धौ हे गिरिश ! न तु गिरीश !।

३. इस मंत्र में अध्यात्मतत्त्व निहित है। सब प्रकार के रोगों को दूर करने की शक्ति इस महामंत्र में है।—('द्विजेन्द्र')

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सब देवताओं के प्रमुख सर्वपूज्य, देव-हितकारी तथा सांसारिक भय (आवागमन) रूपी व्याधियों को दूर करके स्वस्थ रखनेवाले हैं। इसलिये हे प्रभो! आप हमें सर्वोत्तम बनावें तथा सर्प, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं एवं अधोगामी (नीच) राक्षसों से बचावें ॥ ५ ॥

असौ यस्ताम्रोऽअरुणऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनꣳ रुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेडऽईमहे ॥६॥

इस मंत्र में सूर्यरूपेण भगवान् रुद्र की स्तुति की जा रही है। जो रुद्र[1] प्रत्यक्ष प्रातःकालीन लाल-वर्ण के सूर्य एवं सायंकाल में भी लाल-वर्ण मंगल के रूप में दृष्टिगोचर होते हुए, दिन भर में विविध रंग-रूप धारण करते हैं। अर्थात् जिनकी सहस्रों किरणें रुद्रांशरूप में उदय से अस्त तक दिशाओं को प्रकाशित करती रहती हैं, जो संसार को वैभवपूर्ण बनाने में सर्वथा समर्थ हैं, वे हम सबों के क्रोध का निवारण करें। साथही हमलोग आदित्यरूप उन रुद्र भगवान् की इसलिये प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे क्रोध को अपनी किरणों द्वारा शमन करके हमें वैभवपूर्ण (मंगलमय) बनावें ॥ ६ ॥

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपाऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥

उदय-अस्त काल में विशेष लाल-वर्ण के आदित्यरूपी रुद्र—जो रातरूपी कालिमा से 'नीलकण्ठ' कहे जाते हैं, किं वा भक्तों के कष्टरूपी विष को निवारण करने वाले (घोंटने वाले) हैं—वे रुद्ररूपी शिव हम सबों को सर्वदा सुख देवें। अथवा जिन्हें वैदिक संस्कारहीन (गोप) एवं जल भरनेवाली शूद्र स्त्रियाँ भी देखती हैं। अर्थात् ऊँच-नीच सभी वर्णं के मानव तथा प्राणिमात्र जिन आदित्यरूप रुद्र भगवान् का नित्यशः दर्शन करते हैं; वे समदर्शी भगवान् शंकर सबका कल्याण करें ॥ ७ ॥

---

१. सूर्योदये सर्वमंगलप्रदानाद् रक्तो वर्णो रुद्रार्कः सर्वप्राणिनां शं विदध्यादिति तात्पर्यार्थः। 'उदये सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति' चेत्युक्तेः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो येऽअस्य सत्वानोऽहन्तेभ्योऽकरन्नमः ॥ ८ ॥

हे सहस्राक्ष, नीलकण्ठ भगवान् रुद्र ! आपको हम सब बार-बार प्रणाम करते हैं। साथही आपके मेषादि राशियों तथा मेघादि अनुचरों (पार्षदों) को भी हमलोग नमस्कार करते हैं; क्योंकि वे सभी हम लोगों के लिये शिवकल्प (रुद्र तुल्य) हैं ॥ ८ ॥

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

हे भगव (ऐश्वर्यवान्) प्रभो ! आप अपने धनुष की दोनों छोरों में चढ़ी हुई 'ज्या' को शीघ्र उतार लीजिये। साथही अपने हाथ में लिये 'बाण' को भी दूर फेंक दीजिये, जिससे हमारे लिये आप सौम्य मूर्त्ति होकर सब प्रकार के रोग-शोक को दूर कर सकें—ऐसा बन जाइए—बस, यही निवेदन है ॥ ९ ॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ऽ उत ।
अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥

इस प्रकार जटाजूट धारण करने वाले रुद्र भगवान् (कपर्दी) का धनुष हमारे लिये ज्या-रहित (डोरीहीन) हो तथा उनका तरकस भी नोकीले बाणों से रहित हों अर्थात् वे बाण भी विफल हो जायँ। साथही रुद्र भगवान् के म्यान भी खड्गहीन हो जायँ। तात्पर्य यह कि रुद्र हम भक्तों के लिये सब प्रकार से शस्त्रास्त्र-हीन होकर सौम्यमूर्त्ति बन जायँ, जिससे हमारा कल्याण हो ॥ १० ॥

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥ ११ ॥

हे मीढुष्टम ! (ज्ञान सुधाभिसिचक !) रुद्र प्रभो ! आपके हाथ में जो धनुष रूपी आयुध है, उससे हम लोगों को सर्वत्र यक्ष्मादि (राजरोगों) से बचाइये। अर्थात् किसी प्रकार का उपद्रव न हो—ऐसा उपाय कीजिए ॥ ११ ॥

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।
अथो यऽइषुधिस्तवारेऽअस्मन्निधेहि तम् ॥ १२ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे रुद्र ! आपके धनुष एवं तरकस हमारी सर्वतोभाव से रक्षा करें, अर्थात् आपके बाणों द्वारा हम लोगों को किसी प्रकार की क्षति न होवे। सुतराम् धनुष-बाण दूर रखकर अपनी कृपा-दृष्टि से आप हमारी सुरक्षा करें ॥ १२ ॥

अवतत्य धनुष्ट्वᳬसहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य्य शल्यानाम्मुखाशिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥

हे सहस्राक्ष ! [१]इन्द्रस्वरूप ! हे सैकड़ों शर धारण करने वाले विराट् रुद्र ! आप अपने धनुष की प्रत्यञ्चा उतार डालिये तथा अपने बाणों को मुखहीन बना, शान्त-चित्त (स्वस्थ) होकर हमारा कल्याण कीजिए ॥ १३ ॥

नमस्तऽआयुधायानाततायधृष्णवे ।
उभाब्भ्यामुत तेनमोबाहुब्भ्यान्तव धन्न्वने ॥ १४ ॥

हे रुद्रदेव ! प्रत्यञ्चाविहीन आपके उस धनुष को प्रणाम है। साथ ही शत्रुओं को मारने में दक्ष आपकी दोनों भुजाओं को भी बार-बार प्रणाम है ॥ १४ ॥

मानोमहान्तमुतमानोऽअब्र्भकम्मानऽउक्षन्तमुतमानऽउक्षितम् ।
मानोव्वधीःपितरम्मोतमातरम्मानःप्प्रियास्तन्न्वोरुद्ररीरिषः ॥१५॥

हे रुद्र ! आप हमारे वृद्ध गुरुजनों (माता-पिता एवं सगे सम्बन्धियों) को तथा पुत्र-पौत्रों एवं तरुण भ्राताओं को न मारिये। आप हमारे गर्भस्थ बच्चों की रक्षा कीजिये तथा कर्मानुसार उनकी आयु शेष हो गयी हो, तो भी उनपर आपकी कृपा रहनी चाहिये—यही हमारी प्रार्थना है ॥ १५ ॥

मानस्तोके तनयेमानऽआयुषिमानोगोषुमानोऽअश्श्वेषुरीरिषः ।
मानोव्वीरान्रुद्रभामिनोव्वधीर्हविष्म्मन्तःसदमित्त्वाहवामहे ॥१६॥

हे रुद्र ! आप हमारे पुत्र-पौत्रों की हिंसा मत कीजिये, हमारी आयु क्षीण न होने पावे। साथ ही हे विभो ! हमारे पशुओं (अश्व, गौ आदिकों) की हिंसा न होने पावे। हमारे क्रोधी वीर सैनिकों को भी न मारिये; क्योंकि हमलोग

---

१. यज्ञ के प्रधान देवता 'इन्द्र' हैं। अतः यहां पर इन्द्र के रूप में रुद्र का स्मरण किया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपको यज्ञाहुति ग्रहण करने के लिये अपने यहाँ बुलाते हैं। अर्थात् हमलोग आपके शरणागत होकर प्रार्थना करते हैं ॥ १६ ॥

नमोहिरंण्यबाहवे सेनान्न्ये दिशाञ्चपतंयेनमोनमोंव्वृक्षेब्भ्यो हरिंकेशेब्भ्यः पशूनाम्पतंयेनमोनमंः शष्पिञ्जंरायत्त्विषीमतेपथीनाम्पतंयेनमोनमोहरिंकेशायोपवीतिनें पुष्टानाम्पतंयेनमोनमोंबब्भ्लुशायं ॥१७॥

सुवर्ण के भूषणों से विभूषित भुजावाले, सेनापति भगवान् रुद्र के लिये प्रणाम है। हरे रंग के पत्र-रूप-केश वाले अश्वत्थ वृक्षरूपी रुद्र प्रभु के लिये वार-वार नमस्कार है। जो समस्त दिशाओं के तथा पशुओं (सब जीवों) के पति हैं, उन रुद्रदेव को प्रणाम है। शोभासम्पन्न पीले बीजांकुर के समान पीतवर्ण वाले मार्गरक्षक रुद्र भगवान् को वार-वार नमस्कार है। मंगलमय पवित्र यज्ञोपवीत धारण करने वाले तथा काले केश वाले अर्थात् जरा (बुढ़ापा) रहित उस नवयुवकरूप महापुरुष रुद्र को प्रणाम है, जो गुणी एवं स्वस्थ प्राणियों के परिपालक (स्वामी) हैं। अर्थात् आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक रूप से भी सर्वोपरि रुद्रदेव को वार-वार नमस्कार है ॥ १७ ॥

नमोंबब्भ्लुशायं[1] व्व्याधिनेऽन्नांनाम्पतंये नमोनमो भवस्यंहेत्त्यैजगंताम्पतंये नमोनमो रुद्द्रायांततायिने क्षेत्त्राणाम्पतंये नमोनमंः सूतायाहंन्त्यैव्वनांनाम्पतंये नमोनमो रोहिंताय ॥ १८ ॥

पाण्डुवर्ण वाले अथवा वृषभारूढ़ रुद्र के लिये नमस्कार है, शत्रुओं को वेधने के कारण व्याधिस्वरूप तथा अन्नपूर्णापति (अन्नों के स्वामी) भगवान् रुद्र (शिव) को प्रणाम है। भवसागर से तारने वाले (तारक मंत्रोपदेश द्वारा भक्तभवभंजक) रुद्रदेव को नमस्कार है, अक्षय आयुधधारी जगत्पति शंकर को प्रणाम है, देहधारी जीवों के संरक्षक एवं अहिंसक उस आनन्दवन-निवासी रुद्र भगवान् को नमस्कार है, जो संसाररूपी रथ के प्रमुख सारथी (संचालक) हैं ॥१८॥

---

१. पाण्डुरोग में रक्तह्रास होनेपर रोगियों का जो रंग होता है, उसको 'बभ्लुश' कहते हैं। अथवा बिभर्ति रुद्रमिति 'बभ्लुः' = वृषभः, तत्र शेते योऽसौ 'बभ्लुशः' रुद्रः (शिवः), तस्मै बभ्लुशाय = रुद्रायेत्यर्थः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नमो रोहिताय[1] स्थपतयेव्वृक्षाणाम्पतयेनमोनमोभुवन्तयेँव्वारिवस्कृतायौषधीनाम्पतयेनमोनमो मन्त्रिणे व्वाणिजाय कक्षाणाम्पतयेनमोनमऽउच्चैर्ग्घोषायाक्क्रन्दयतेपत्तीनाम्पतयेनमोनमः[2] कृत्स्नायतया ॥१९॥

लोहित वर्णवाले गृहादि रचयिता (सृष्टिकर्ता) विश्वकर्मरूप रुद्रदेव को नमस्कार है, भूमण्डल के विस्तारक, वृक्षादि वनस्पतियों एवं ओषधियों (जड़ी-बूटियों) के संरक्षक रुद्र प्रभु को प्रणाम है। ग्राम-नगर एवं वन-पर्वतों के रक्षकरूप रुद्र को प्रणाम है तथा सचिवस्वरूप, व्यापारियों के रूप में समस्त जगत् का व्यापार चलाने वाले, युद्धभूमि में दहाड़ने वाले उस रुद्रदेव को बार-बार प्रणाम है। शत्रुओं को रुलाने वाले एवं सेनाधिनायक के रूप में पत्तियों के पतिस्वरूप रुद्र को प्रणाम है ॥ १९ ॥

नमः कृत्स्नायतया[3] धावतेसत्त्वानाम्पतयेनमोनमः सहमानायनिव्व्याधिनऽआव्व्याधिनीनाम्पतयेनमोनमो निषङ्गिणेककुभायस्तेनानाम्पतयेनमोनमो निचेरवेपरिचरायारण्यानाम्पतयेनमोनमोवञ्चते ॥२०॥

जो कानों तक धनुष की प्रत्यंचा खींचकर दौड़ते हुए हमारी सुरक्षा में—किंवा सब प्रकार के लाभ देने में सर्वदा तत्पर रहते हैं, उन रुद्र नारायण को प्रणाम है। शरणागत-पालक एवं शत्रु-घालक सर्वोपरि शूर-वीर सैन्य-संरक्षक भगवान् रुद्रदेव को नमस्कार है। यहां तक कि जो उपद्रवकारियों पर खड्ग प्रहार करनेवाले, गुप्त वनेचर एवं स्तेय-कर्म-परायण चोरों की भांति निरन्तर भ्रमण करनेवाले हैं, अथवा जो हाट (बाजार) में दलालों की भांति

---

१. रोहिताय = लोहितवर्णाय—इत्यत्र रलयोरभेदत्वात् साधुप्रयोगः । स्थपतिः = विश्वकर्मा तस्मै लोहितवर्णायेत्यर्थः । यतो वै इष्टिका लोहितवर्णा भवति तस्याधिष्ठातृदेवत्वमत्र सूचितम् । अतो लोहितायेति पाठान्तरम् ।

२. एक रथ, एक हाथी, तीन अश्व एवं पांच पदाति (पैदल) सेना को 'पत्ति' संज्ञा दी गयी है।

३. कृत्स्नं यथा स्यात्तथा आयतनं विस्तृतं धनुर्यस्य स कृत्स्नायतः, तस्य भावस्तया तथोक्तया आकर्णपूर्णधनुष्ट्वेनेत्यर्थः ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्योहार करने में निपुण हैं—ऐसे अन्तर्यामी वन-रक्षक प्रभु रुद्रदेव को वार-वार नमस्कार है। अर्थात् जीव तथा ईश्वररूप में एकमात्र रुद्र ही सर्वत्र विराजमान होकर जगल्लीला करते रहते हैं—ऐसे रुद्र देवता को निरन्तर प्रणाम है ॥ २० ॥

नमोव्वञ्चते परिवञ्चतेस्तायूनाम्पतयेनमोनमो निषङ्गिणऽइषुधिमते-तस्कराणाम्पतयेनमोनमः सृकायिभ्यो जिघांᳬसद्भ्योमुष्णताम्पत-येनमोनमोसिमद्भ्योनक्तञ्चरद्भ्यो व्विकृन्तानाम्पतये नमः ॥२१॥

[1]सब प्रकार के वंचक एवं वंचकों के पतिस्वरूप धनापहारी तथा अन्तर्यामी प्रभु रुद्र के लिये नमस्कार है। गुप्तचोरों (इन्द्रियादिकों) के रक्षक तथा भक्तों के पापरूपी धन का प्रत्यक्ष अपहरण करनेवाले रुद्र को प्रणाम है। हाथों में धनुष-बाण एवं खड्ग धारण करके उपद्रवकारियों को दण्ड देनेवाले वज्रधारी इन्द्ररूप उस रुद्र को प्रणाम है, जो स्वयं हिंसकों के हिंसक तथा विकृतरूप वालों के शासक हैं। इसी प्रकार जो क्षेत्र-धान्यापहारी हैं, जो रात्रि में चोर-डाकू का काम करते हैं, जो नृशंस एवं भयंकर हैं, उनके शासक स्वामी रुद्रदेव को वार-वार हमलोगों का प्रणाम है ॥ २१ ॥

नमऽउष्णीषिणे गिरिचरायकुलुञ्चानाम्पतयेनमोनमऽइषुमद्भ्यो-धन्वायिभ्यश्श्चवोनमोनमऽआतन्वानेभ्यः प्प्रतिदधानेभ्यश्चवोनमो-नमऽआयच्छद्भ्योस्यद्भ्यश्चवोनमोनमोव्विसृजद्भ्यः ॥ २२ ॥

जो भगवान् रुद्र वेश-परिवर्तन करके नानारूपों में सर्वत्र विचरते हैं। अर्थात् जो कभी सिर में पगड़ी बाँध कर वैद्यों की भाँति ग्रामों एवं नगरों में जनता के कल्याणार्थ भ्रमण करते हैं, कभी २ छल-बल द्वारा दूसरों की भूमि (गृह-क्षेत्र आदि) का अपहरण करते हैं—ऐसे स्वामी को प्रणाम है। जो शस्त्रधारी शत्रुओं को भय देने एवं शासन करने के लिये स्वयं भी धनुष-बाण धारण करते हैं, अर्थात् दूसरों के धन-धान्य को लूटनेवाले चोर-डाकुओं को

---

१. यहाँ पर लक्षणतया सबके शासक 'रुद्र' ही हैं—यह अभिव्यक्त करने के लिये 'सर्वेषां पतये नमः' लिखा है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दण्ड देने में जो सर्वदा तत्पर रहते हैं—ऐसे रुद्र देवता को नमस्कार है। शत्रुओं एवं दुष्टों के दमनार्थ जो धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाये रहते हैं तथा जो कानों तक बाण खींचकर दस्युगण एवं राक्षसों के विनाश करने में तत्पर रहते हैं—ऐसे जगत्प्रभु रुद्र भगवान् को वार-वार प्रणाम है ॥ २२ ॥

नमो विसृजद्भ्यो[1] विद्ध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमो नमः सभाभ्यः ॥ २३ ॥

जगत् की सृष्टि करने वाले तथा संहार करने वाले प्राणियों के हृदय में संचार करने वाले उस रुद्र प्रभु को प्रणाम है, जो जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्था में सर्वदा सबके हृदय में विराजित रहते हैं, जो अत्यन्त शीघ्र गति से सब प्राणियों के अन्तर्गत रहकर जीवन दान देते हैं, उन प्राणस्वरूप रुद्र देवता को वार-वार नमस्कार है ॥ २३ ॥

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमो ऽश्वेभ्यो ऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविद्ध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमो नमो गणेभ्यः ॥ २४ ॥

जो स्वयं सभा तथा सभापतिस्वरूप है, जो युद्धस्थल में अश्व या अश्वपति तथा स्वयं सेनापति के समान है—ऐसे रुद्रनारायण को नमस्कार है। इस प्रकार सर्वत्र रुद्र-दृष्टि रखनी चाहिये; क्योंकि वे ही देव या देवी की सेनाओं में विशेषरूप से शत्रुओं को बाणों से वेधने में कुशल हैं। वे ही रणस्थल में रणचण्डी दुर्गा के रूप में किंवा उत्कृष्ट सम्पत्तिशालिनी 'ब्राह्मी' आदि जगज्जननी के रूप में स्थित रहते हैं—ऐसे रुद्र प्रभु के लिये नमस्कार है ॥ २४ ॥

---

१. पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'विसृजद्भ्य' का अर्थ 'विमुंञ्चयति बाणानरिष्विति विसृजन्तस्तेभ्यः'—ऐसा अर्थ किया है—जो प्रसंगानुकूल नहीं है। इसी प्रकार 'विद्धयद्भयः' का अर्थ 'शत्रून् ताड्यद्भ्यय' किया है। यहां पर 'सृज्' धातु सृष्टि करने तथा 'विध्' धातु उच्छेद या संहार करने अर्थ में है। अतः सृष्टि एवं संहार करनेवाले रुद्र ही अर्थ प्रसंगानुकूल जान पड़ता है—(सं०)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्चवोनमोनमो व्रातेभ्योव्रातपतिभ्यश्चवोनमोनमो गृत्सेभ्योगृत्सपतिभ्यश्चवोनमोनमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमोनमः सेनाभ्यः ॥ २५ ॥

देवयोनि-विशेष [1]भूत-गणों को तथा उनके पतिस्वरूप सुर-समूहों को प्रणाम है, अनेक जातियों के संघस्वरूप आपको तथा[2] गृत्सपति मेधावी जनों एवं उनके स्वामीस्वरूप आपको प्रतिदिन प्रणाम है। यहां तक कि नग्न, मुण्डित एवं जटिल—आदि विकृत स्वरूप वाले विविध रूपधारी आपको प्रणाम है। हे रुद्र देवता ! आप ही विश्वरूप हैं, आप ही हयग्रीव आदि अवतारी महापुरुष हैं, अतः अनेक रूप धारण करने वाले आपको वार-वार प्रणाम है ॥ २५ ॥

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमोनमो रथिभ्योऽअरथेभ्यश्चवो नमोनमः क्षत्तृभ्यः सङ्ग्रहीतृभ्यश्च वो नमोनमो महद्भ्योऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

हे रुद्रदेव ! साक्षात् सेनारूप तथा सेनानायकस्वरूप आपको प्रणाम है। रथसहित (सवार) अथवा रथरहित (पैदल) चलने वाले आपको नमस्कार है। रथों के अधिष्ठाता एवं रथ-संगृहीता के रूप में विचरने वाले आपको प्रणाम है। जाति, बल विद्यादि उत्कृष्ट वैभवों वाले पूज्य एवं प्रमाणतः बाल स्वरूपधारी आपको निरन्तर ही नमस्कार है ॥ २६ ॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमोनमः कुलालेभ्यः कर्म्मारेभ्यश्च वो नमोनमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमोनमः श्वनिभ्योमृगयुभ्यश्च वो नमोनमः श्वभ्यः ॥ २७ ॥

शिल्पियों में रथ बनाने वाले अथवा कामसम्बन्धी कार्य करने वाले (बढ़ई स्वरूप) आपको नमस्कार है, मृण्मयी विविध प्रकार के पात्र निर्माण में

१. 'भूतोऽमी देवयोनयः' इत्यमरविधानात् ।

२. महीधराचार्य ने 'गृत्स' शब्द के यहां दो अर्थ किये हैं—मेधावी (बुद्धिमान्) अथवा लम्पट । परन्तु उवटाचार्य ने केवल मेधावी ही अर्थ किया है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुशल 'कुम्भकार' स्वरूप आपको प्रणाम है, लोहे के विविध शस्त्र बनाने में निपुण 'लोहकार' के रूप में विराजने वाले आपको नमस्कार है। कोल-भील स्वरूप वनचारी के रूप में अवस्थित किंवा व्याधा के रूप में संकीर्ण जातियों में रहने वाले आपको प्रणाम है। यहाँ तक कि कुत्ते आदि पशुओं के गले में रस्सी बाँध कर शिकार की कामना से इधर–उधर घूमने वाले किंवा जीवमात्र के हृदय में तत्तत्स्वरूप में विराजने वाले सर्वेश्वर आपको मेरा वार-वार प्रणाम है[1] ॥ २७ ॥

नमः॒ श्वभ्य॑ः श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑ः शर्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च॒ नम॑ः कप॒र्दिने॑ ॥

श्वानस्वरूप रुद्रदेव को प्रणाम है, श्वानरक्षक आपको प्रणाम है। जिससे जगत् की उत्पत्ति होती है, ऐसे भवरूप शिव के निमित्त नमस्कार है। पापहारी शम्भु एवं अज्ञानी जीवों के पति स्वरूप पशुपति भगवान् रुद्र को प्रणाम है। विषपान के कारण नीलकण्ठ वाले तथा श्वेत स्वरूप के कारण श्वेत ग्रीवावाले भगवान् रुद्र के निमित्त नमस्कार है। अथवा नीलाकाश किंवा नील मेघ स्वरूप होने के कारण सूर्य के भीतर अवस्थित रुद्रदेव को वार-वार प्रणाम है ॥ २८ ॥

नम॑ः कप॒र्दिने॑ च॒ व्युप्तकेशाय च॒ नम॑ः सहस्राक्षाय॑ च शतध॑न्वने च॒ नमो॑ गिरिश॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च॒ नमो॑ ह्र॒स्वाय॑ ॥ २९ ॥

[2]जटाजूटधारी तथा मुण्डित केश वाले प्रभु रुद्र नारायण को नमस्कार है। जिनके सहस्रों नेत्र हैं और जो सैकड़ों धनुष को धारण करने वाले हैं, ऐसे रुद्रदेव को प्रणाम है। समस्त प्राणियों में व्याप्त होकर पर्वत शिखर (कैलास)

---

१. यहां पर रुद्र भगवान् में समदर्शिता दिखायी गयी है; क्योंकि 'शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।' वस्तुत यहां 'श्व' शब्द पूजावाचक किंवा 'पूज्य' अर्थ में है। अतः पूज्येभ्यः पूज्यपतिभ्यश्चेति तात्पर्यमूह्यम्।

२. कपर्दोऽस्य रुद्रस्य जटाजूटो। तथाह्यमरकोशे—'कपर्दोऽस्य जटाजूटः, पिनाकोऽजगवं धनुः।' तथा च–'उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः शितिकण्ठः कपालभृत्।'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पर शयन करने वाले भगवान् शिव को प्रणाम है। जो स्वयं 'शिपिविष्ट' स्वरूप हैं; अथवा विष्णु, रुद्र एवं यज्ञस्वरूप हैं, उन रुद्र प्रभु के निमित्त नमस्कार है। जो मेघरूप में समस्त सृष्टि को अतिशय तृप्त करते हैं—ऐसे शस्त्रास्त्र (धनुष-बाण) धारण करने वाले भगवान रुद्र को हम भक्तों या यजमानों का बार-बार प्रणाम है॥ २९॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च नम आशवे ॥ ३०॥

हे रुद्रदेव ! लघु रूप वाले तथा संकुचित अंग के वामन रूपधारी आपको नित्य प्रणाम है। प्रौढ़ (युवक) तथा वृद्ध स्वरूप आपके निमित्त मेरा नमस्कार है। विद्या-विनय-सम्पन्न, अतिवृद्ध विद्वानों के साथ सुशोभित रहने वाले गुणी महापुरुष के लिये प्रणाम है। सृष्टि के आदि में रहने के कारण सर्वाग्रगण्य एवं सर्वपूज्य प्रमुख देव आपको बार-बार प्रणाम है॥ ३०॥

नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१॥

जगद्व्यापी एवं सर्वत्र गतिशील प्रभु के लिये नमस्कार है। वेग गतिवाले जल प्रवाह में विद्यमान, आत्मश्लाघी तथा जलतरङ्गों (चंचल एवं सुस्थिर सलिल) में स्थिर रहनेवाले आपको नमस्कार है। साथही नदियों में एवं द्वीपों में भी सर्वत्र विद्यमान रहनेवाले आपको बार-बार प्रणाम है[2] ॥ ३१॥

---

१. 'शिपिविष्टस्तु खलतौ दुश्चर्मणि महेश्वरे' इस कोशप्रमाण से रुक्षचर्मधारी शिव से तात्पर्य है। 'विष्णुः शिपिविष्टः' इति श्रुतेः। अथवा 'पशवो वै शिपिः' इति श्रुतेः। किंवा 'यज्ञो वै शिपिः'। किन्तु मेरे विचार में आध्यात्मिक दृष्टि से तो आदित्य-मण्डल में स्थित रश्मियों को ही 'शिपि' शब्द से कहा गया है। शिपिविष्टः, रश्मिसंकर्षित इत्यर्थः। (द्विजेन्दस्य)

नोट—यहां पर 'शीघ्र, शीभ, ऊर्मि, नदी तथा द्वीप'—इन मूल शब्दों से भाव में प्रत्यय करके 'शीघ्र्य, शीभ्य, ऊर्म्य, नादेय तथा द्वीप्य' वैदिक प्रयोग विचारणीय हैं। तथाहि—पचाद्यत् तत्र भव इति छान्दसो यत्प्रत्ययः। एवमेव सर्वत्रोह्यमित्यलम् । (सं०)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नमो॑ज्ज्येष्ठाय॑ च कनिष्ठाय॑ चनम॑÷पूर्व्वजाय॑चापरजाय॑चनमो॑ मद्ध्यमाय॑चापगल्भाय॑चनमो॑जघन्न्याय॑चवुध्न्याय॑चनमः॑सोभ्भ्या॑य ॥

संसार में सबसे ज्येष्ठ[1], कनिष्ठ किंवा युवक स्वरूप परमात्मा प्रभु को प्रणाम है; क्योंकि वही प्रभु (रुद्रदेव) सृष्टि के आदि में [2]हिरण्यगर्भ के रूप में सर्वप्रथम उत्पन्न होते हैं और समस्त जीवों के हृदय में विद्यमान रहकर बाल, वृद्ध एवं युवारूप से विराजते रहते हैं। अन्त में (प्रलयकाल में) भी वे ही लालाअग्नि रूप से 'कालरुद्र' कहे जाते है—ऐसे अप्रगल्भ, अव्युत्पन्न, इन्द्रिय प्रकाश-रहित अखण्डस्वरूप भगवान् के निमित्त निरन्तर नमस्कार है। पशु-पक्षी तथा कीट-पतङ्ग एवं स्वेदज, उद्भिज आदि में वर्तमान रहने वाले, यहां तक कि स्थावर-जंगम समस्त चराचर जगत् में विद्यमान उस परमात्मा 'रुद्र' प्रभु को प्रणाम है ॥ ३२ ॥

नमः॑सोभ्भ्या॑य चप्प्रतिसर्य्याय॑चनमो॑याम्म्या॑यचक्षेम्म्याय॑चनमः॑ श्लोक्क्या॑यचावसान्न्याय॑चनम॑ऽउर्व्वर्य्याय॑चखल्ल्याय॑चनमो॑वन्न्या॑य ॥

हे रुद्रदेव ! गन्धर्व लोक में किंवा पुण्य-पापमय मनुष्यलोक (पृथ्वी) में विद्यमान रहनेवाले आपको प्रणाम है। वैवाहिक रक्षासूत्र (कङ्कण) के रूप में दृश्यमान आपको नमस्कार है। पापियों को नारकीय पीड़ा देनेवाले तथा पुण्यात्माओं की कुशल-क्षेम करनेवाले आपको प्रणाम है। साथही संसार में सुयश—प्रचार के कारण स्वरूप अथवा यज्ञों में वैदिक मंत्र—रूप आपको नमस्कार है। जिसकी कृपा से प्राणी जन्म-मृत्यु के बन्धन से छुटकारा पा जाता है—ऐसे वेदान्त स्वरूप आपको प्रणाम है। उपजाऊ भूमि में धान्य स्वरूप तथा खलिहानों में शस्य-पुञ्ज के रूप में विद्यमान आपको प्रणाम है ॥ ३३ ॥

---

१. सृष्ट्यादावुत्पन्नत्वाज्ज्येष्ठत्वम् , पश्चात् पुनर्विद्यमानत्वाल्लोके कनिष्ठत्व-मुच्यतेऽत्रेति तात्पर्यम् ।

२. सृष्टिकाल में हिरण्यगर्भ के रूप में—सब जीवों के गर्भ में विद्यमान होने तथा बालक की रक्षा करने एवं युवा—वार्द्धक्य काल में भी साथ-साथ रहने के कारण वह परमात्मा आत्मा (जीव) के रूप में प्रथम, द्वितीय आदि संज्ञा प्राप्त करता है और चयापचय के नाते ज्येष्ठ-कनिष्ठ भी कहा जाता है। (सं०)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नमोवन्न्याय चकक्ष्यायचनमः श्रवायचप्रतिश्रवायचनमऽआ-शुषेणायचाशुरथायचनमःशूरायचावभेदिनेचनमो विल्मिने ॥ ३४ ॥

वन में होने वाले वृक्षों, लताओं एवं तृणों (घासों) में विद्यमान आपको नमस्कार है। नदीकक्ष किंवा पर्वतकक्ष में उपस्थित आपको प्रणाम है। शब्द-प्रतिशब्द (ध्वनि) रूप में सर्वत्र विराजमान आपको नमस्कार है। शीघ्रगामी रथों तथा सेनाओं में स्थित आपको प्रणाम है। युद्धविशारद धीर-वीर पुरुषों में विद्यमान तथा शत्रुओं को विदारण करने वाले शस्त्रास्त्र स्वरूप आपको वार-वार प्रणाम है ॥ ३४ ॥

नमो विल्मिने चकवचिनेचनमोव्वर्म्मिणेचवरूथिनेचनमः श्रुता-यचश्रुतसेनायचनमो दुन्दुभ्यायवाहनन्न्यायचनमोधृष्णवे ॥ ३५ ॥

शिरस्त्राण (पगड़ी या लौहटोप) धारण करने वाले आपको नमस्कार है, शरीर-रक्षक कवच धारण करने वाले को प्रणाम है। अर्थात् लौहमय देहधारी वीर महापुरुष के निमित्त नमस्कार है। गुप्त सेनायुक्त रथवाले किंवा वरूथी (हाथी के ऊपर हौदे पर आरूढ़) आपको प्रणाम है। प्रसिद्ध सैन्य होने के कारण 'श्रुतसेन' नामधारी आपको प्रणाम है। रणदुन्दुभी बजाकर वाद्यसाधन-समेत दण्डधारी आपको प्रणाम है[1] ॥ ३५ ॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमोनिषङ्गिणेचेषुधिमते च नम-स्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥

स्वपक्ष-परिपालक प्रगल्भ रूप आपको प्रणाम है, विचारशील एवं विपक्ष-दलन करने वाले अर्थात् बकवादी पुरुषों को हराने वाले प्राज्ञ पुरुष के निमित्त नमस्कार है। तीक्ष्ण बाण तथा तेज तलवार (खड्ग) धारण करने वाले

नोट—इस मंत्र में भी आध्यात्मिक रहस्य कूट २ कर भरा है। अर्थात् कवच रूपी माया से आवृत सद्गुण सैन्य समेत, सत्य विज्ञान रूपी धन वाले, पाप एवं दोष रूपी शत्रुओं को ओंकार ध्वनि रूपी दुन्दुभी से जगाकर संहारने वाले, श्रुति-सिद्ध महापुरुष सदाशिव 'रुद्र' परमात्मा को प्रणाम है।—'द्विजेन्द्र'।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपको प्रणाम है। सुन्दर धनुष एवं विविध प्रकार के आयुध (त्रिशूल आदि) धारण करने वाले पिनाकी भगवान् शंकर को प्रणाम है ॥ ३६ ॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च नमः कूप्याय ॥ ३७ ॥

छोटे २ जलस्रोतों के बीच में होने वाले लघुमार्ग (पगडण्डी) से लेकर बृहद् राजमार्ग (सड़क) में भी विराजमान आपको प्रणाम है। पर्वतीय दुर्गम[1]-मार्ग तथा तराई के सरल मार्ग में स्थित आपको प्रणाम है। नहरों, कूपों, बावलियों तथा सरोवरों में विराजने वाले आपको नमस्कार है, नदियों में स्थित तथा सर्वान्तर्यामी, सर्वत्र विचरने वाले सर्वसमर्थ प्रभु को वार-वार प्रणाम है ॥ ३७ ॥

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो वात्याय ॥ ३८ ॥

हे रुद्र ! कूप एवं गर्त (गड्ढे) आदि में विद्यमान आपको नमस्कार है, 'वीध्र'[2] अर्थात् प्रकाश तथा अन्धकार में स्थित, धूप एवं छाया में स्थित आपको प्रणाम है। हे प्रभो ! आप ही मेघ और विजुली में निवास करते हैं, आप ही वारिधारा एवं वृष्टि होने किंवा न होने में हेतु स्वरूप है। इस प्रकार सर्वत्र विद्यमान् आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः शङ्गवे ॥ ३९ ॥

वायुमण्डल में विद्यमान आपको प्रणाम है तथा प्रलयकालीन पवन में रहने वाले आपको प्रणाम है। गृहभूमि में वास्तुदेव के रूप में विद्यमान एवं

१. वेद-विहित मार्ग 'सुपथ' है और वेद-निषिद्ध मार्ग 'कुपथ' है—यह जानकर सन्मार्गावलम्बी होना चाहिये।

२. यहां पर 'वीध्राय' के तीन अर्थ हैं—विशेषेण इध्रं निर्मलं शरदाक्तम्। अथवा विगतं इध्रो दीप्तिर्यस्मात् स तत्र भवः। यद्वा वी-ध्री = धनागमस्तत्र भवायेत्यर्कः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गृहाक्षक आपके निमित्त नमस्कार है। चन्द्रमण्डल में स्थित अथवा [1]उमासहित आप रुद्र भगवान् को प्रणाम है, प्रातःकालीन तथा सायंकालीन सूर्यस्वरूप रक्तवर्ण वाले आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥

नमः॑ शङ्ग॒वे॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नम॑ऽउ॒ग्राय॑ च भी॒माय॑ च॒ नमो॑ऽग्रेव॒धाय॑ च दूरेव॒धाय॑ च॒ नमो॑ ह॒न्त्रे च॒ हनी॑यसे च॒ नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यो॒ नम॑स्ता॒राय॑ ॥ ४० ॥

कल्याणकारी वाणी वाले तथा प्राणिमात्र के प्रतिपालक रुद्रप्रभु को प्रणाम है। शत्रु संहार वास्ते कठोर आयुध (शस्त्र) धारण करने वाले अथवा शत्रुओं के लिये भयंकर अन्तःकरण वाले उस देवता को नमस्कार है—जो आगे से वधकारक हैं, किंवा दूर से ही वैरीवध करने में निपुण हैं। प्रलयकाल में सब प्राणियों को मारने वाले, विशेषकर शत्रु दमनकारी 'रुद्र' प्रभु को प्रणाम है। हरे पत्ते रूपी केश धारण करने वाले कल्पतरु रूपी उस प्रभु को प्रणाम है, जो संसार को तारने वाले तारक मंत्र-स्वरूप (ॐकार रूप या 'राम' रूप) हैं ॥ ४० ॥

नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च मयोभ॒वाय॑ च॒ नमः॑ शङ्क॒राय॑ च मयस्क॒राय॑ च॒ नमः॑ शि॒वाय॑ च शि॒वत॑राय च ॥ ४१ ॥

कल्याण करने वाले किंवा सुख स्वरूप भगवान् शिव को प्रणाम है, जो पुष्प-पत्रों द्वारा पूजने पर सांसारिक सुख देनेवाले तथा शास्त्रचर्चा (ज्ञान द्वारा) मनन करने पर पारलौकिक (मोक्ष) देनेवाले हैं—ऐसे रुद्ररूप शंकर को प्रणाम है। जो निष्पाप एवं सतत कल्याण मय होते हुए भक्तों के हितकारी हैं—ऐसे शिवजी को प्रणाम है ॥ ४१ ॥

नम॒ᳬ पार्य्या॑य चावा॒र्या॑य च॒ नमः॑ प्र॒तर॑णाय चो॒त्तर॑णाय च॒ नम॒स्तीर्थ्या॑य च॒ कूल्या॑य च॒ नम॒ᳬ शष्प्या॑य च॒ फेन्या॑य च॒ नमः॑ सिक॒त्याय ॥

संसार-सागर के दोनों पारों (तटों) में विद्यमान तथा संसार-सागर के मध्य में स्थित रहने वाले उस 'रुद्र' भगवान् को प्रणाम है—जो भक्तजनों को

---

१. सोमाय = चन्द्रमसे, किंवा उमया सह वर्तत इति सोमस्तस्मै सोमाय।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भुक्ति-मुक्ति देते हैं। जो तारक मंत्रोपदेश ('ॐ' या 'राम' किंवा 'शिव' 'कृष्ण' आदि नामों के) जप द्वारा संसार से तारने वाले (जीवनमुक्त करने वाले) हैं, जो उत्कृष्ट ज्ञान (शिवतत्त्व ज्ञान) देकर सब को तारने वाले हैं— ऐसे रुद्र प्रभु को प्रणाम है। जो काशी, प्रयाग, पुष्कर आदि तीर्थों में विद्यमान हैं, जो गंगादि नदियों के किनारे कुशादि घास-तृणों के रूप में विराजमान रहते हैं, जो गङ्गाजी के 'फेन' स्वरूप चन्द्रमा को अपने शीश पर धारण करने वाले हैं—ऐसे शिवस्वरूप रुद्र देवता को प्रणाम है ॥ ४२ ॥

नमः॑ सिक॒त्त्याय च प्रवा॒ह्याय च॒ नमः॑ किᳪशिला॒य॑ च॒ क्षय॑णाय च॒ नमः॑ कप॒र्दिने॑ च पुल॒स्तये॑ च॒ नमः॑ऽइरि॒ण्याय च प्रप॒थ्याय च॒ नमो॒ व्रज्ज्या॑य ॥

नदी या समुद्र की रेतों में रहने वाले, जल-थल, वृक्ष-शंकड़—आदि सर्वत्र विराजने वाले प्रभु को प्रणाम है। पर्वत, शिला, पाषाण युक्त स्थानों में विद्यमान तथा अगाध सागर स्वरूप शिव को सतत नमस्कार है। जटाजूटधारी उस शङ्कर को प्रणाम है—जो समस्त प्राणियों के शरीर में—अन्तःकरण में विराजमान रहते हैं, जो तृण रहित मरुस्थल में अथवा बहुजन-सेवित चतुष्पथ में भी विराजमान हैं—ऐसे सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापी रुद्र भगवान् को नमस्कार है ॥ ४३ ॥

नमो॒ व्रज्ज्या॑य च॒ गोष्ठ्या॑य च॒ नम॒स्तल्प्या॑य च॒ गेह्या॑य च॒ नमो॑ हृद॒य्याय च निवे॒ष्प्याय च॒ नम॒ᳪ काट्या॑य च गह्वरे॒ष्ठाय॑ च॒ नम॒ᳪ शुष्क्या॑य ॥

व्रजभूमि-गोचर-भूमि एवं गोशालाओं में विद्यमान आपको प्रणाम है, गृह-शय्या पर विद्यमान, सबके हृदयों में विराजमान शिव को नमस्कार है। गिरि-गुहा, नदी-नद, हिम-चट्टानों तथा ओस के कण-कण में विद्यमान एवं कठोर कण्टकमय बीहड़ वनों में भी विचरनेवाले प्रभु-परमात्मा को वार-वार प्रणाम है ॥ ४४ ॥

नम॒ᳪ शुष्क्या॑य च हरि॒त्याय च॒ नमः॑ पाᳬसव्याय च रज॒स्याय च॒ नमो॒ लोप्या॑य चोल॒प्याय च॒ नम॒ऽऊर्व्या॑य च सू॒र्व्या॑य च॒ नमः॑ प॒र्णाय॑ ॥

जो सूखे एवं हरे काठों (तृणों) में विराजमान हैं, जो रज, धूलि किंवा पुण्य-परागों में भी सर्वत्र रहते हैं, जो दुरूह मार्गों में भी विचरते रहते हैं—ऐसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रुद्र भगवान् को प्रणाम है जो दावाग्नि, बड़वानल तथा जठराग्नि में विद्यमान रहते हुए प्रलयाग्नि स्वरूप हैं—ऐसे रुद्र-नारायण को नमस्कार है ॥ ४५ ॥

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नमऽउद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नमऽआखिदते चप्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्योधनुष्कृद्भ्यश्च वो नमोनमो वः किरिकेभ्योदेवानाꣳहृदयेभ्योनमो विचिन्वत्केभ्यो-नमो विक्षिणत्केभ्योनमऽआनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

हे रुद्र ! आप ही वृक्ष के पर्णं (पत्र) स्वरूप हैं—पुराने पतित पत्तियों के मूल स्थान रूप हैं—ऐसे आप को प्रणाम है। सतत प्रयत्न शील आप को तथा शत्रु-संहार कारी आपको वार-वार प्रणाम है। अभक्तों को कष्टकारी एवं खेद प्रदाता तथा त्रिविध तापों के उत्पादक आपको प्रणाम है, पापियों को नाश करने में निपुण, धनुष-बाण बनाने वाले आपको प्रतिदिन नमस्कार है। साथ ही सृष्टि कार्यं के कारणभूत रुद्रों में प्रधान देवता अग्नि, वायु और सूर्यं स्वरूप आपको प्रणाम है; क्योंकि आप ही सबके हृदय में त्रिदेव (अग्नि-वायु-आदित्य) रूप से विराजमान रहते हैं और उपर्युक्त त्रिदेवों के सहयोग से मेघ रूप होकर वृष्टि द्वारा संसार की सृष्टि करते हैं। आप ही अग्नि, वायु-सूर्यं के संभोग से संसार का पालन एवं संहार भी करते हैं—ऐसे आप (रुद्रप्रभु) को प्रणाम है। आप ही अग्नि-वायु-सूर्यं के हृदय स्वरूप हैं, सर्वप्रथम सृष्टि के मूल कारण स्वरूप आपको वार-वार नमस्कार है ॥ ४६ ॥

द्रापेऽअन्धसस्पतेदरिद्रनीललोहित । आसाम्प्रजानामेषाम्पशूनाम्माभेर्म्मारोङ्मोचनः किञ्चनाममत् ॥४७॥

हे पापी पुरुषों की दुर्दशा करनेवाले ! सोमरक्षक ! अद्वितीय एवं नीलकण्ठ तथा गौर वर्णं वाले शिव स्वरूप रुद्र !! आप हमारे पुत्र-पौत्रादिकों को तथा गौ आदि पशुओं को कभी कष्ट किंवा किसी प्रकार का भय न दें तथा हमारे द्विपद-चतुष्पद रूप प्रजाओं को कभी रोगी न बनावें, वे सर्वदा सुखी एवं स्वस्थ रहें—यही हमारी प्रार्थना है ॥ ४७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इमा रुद्द्रायं तवसेंकपर्द्दिनेंक्षयद्वीरायप्रभंरामहेमतीः ।
यथाशमसंद्द्विपदेचतुंष्पदे व्विश्श्वंम्पुष्टङ्ग्रामेंऽअस्मिन्ननातुरम् ॥४८॥

जिस प्रभु की कृपा से द्विपद पुत्रादि में तथा चतुष्पद गौ आदि में सुख-शान्ति प्राप्त हो, जिसकी दया से इस गांव में तथा निवास-स्थान में सभी प्राणी पुष्ट एवं उपद्रवरहित हों अर्थात् निर्विघ्न जीवन व्यतीत करते हों, उस महाबली एवं जटाधारी महाप्रभु रुद्रदेव के लिए हमलोग अपनी इन्द्रियों को बुद्धिसमेत समर्पित करते हैं ॥ ४८ ॥

या ते रुद्रशिवातनूःशिवा व्विश्श्वाहां भेषजी ।
शिवारुतस्यं भेषजी तयां नो मृडजीवसें ॥ ४९ ॥

हे रुद्र ! सर्वदा सर्वत्र कल्याण करनेवाली, संसार रूपी व्याधि (आवागमन) को दूर करनेवाली तथा महौषधि रूप जो आपकी शिवा (शक्ति) हैं, उसके द्वारा आप हमलोगों को सुखी बनावें ॥ ४९ ॥

परिंनोरुद्रस्यंहेतिर्व्वृणक्तुपरिं त्वेषस्यंदुर्म्मंतिरंघायोः ।
अवंस्थिरामघवंद्भ्यस्तनुष्ष्वमीढ्वंस्तोकायतनंयाय मृड ॥ ५० ॥

रुद्र भगवान् का वह श्रेष्ठ आयुध हमलोगों की रक्षा करे और क्रोधी-पापी यम की दुष्ट बुद्धि हम लोगों के पास न आने पावे, अर्थात् हम से सर्वदा वह दूर ही रहे। हे अभीष्ट सिद्धिप्रद ! प्रभु !! हवि[1] रूप धन से युक्त इन्द्रादि यजमानों को निर्भय करने के लिये आप अपने धनुष की प्रत्यंचा उतार कर, हमारे पुत्र-पौत्रादिकों को सुखी रक्खें, उनपर कोई संकट न आने देवें—यही प्रार्थना है ॥५०॥

मीढुंष्टम शिवंतम शिवोनंःसुमनां भव । परमेव्वृक्षऽआयुंध-न्निधायकृत्तिंव्वसांनऽआचंरपिनांकम्बिभ्रदागंहि ॥ ५१ ॥

हे कल्याणकारी फल-दायक प्रभो ! हमारे लिये आप सुन्दर शान्त चित्त वाले होकर किसी ऊँचे वृक्ष (वटादि)पर अपना त्रिशूलादि आयुध रख छोड़िये ।

---

१. मघवद्भ्यः = इन्द्रादि यजमानेभ्य इत्यर्थः । अत्र मघं = हविः, लक्षणं = घनं विद्यते येषां ते मघवन्तो यजमानास्तेभ्यस्तथोक्तेभ्यस्तदर्थमिति भावः । गूढार्थोऽयं मंत्रो मुमुक्षुमहात्मभिर्विशेषतोऽवधेयो विज्ञेयश्चेत्यलं विस्तरेण ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साथ ही गजचर्म किंवा मृगचर्म धारण करते हुए एकान्त में बैठ कर तप कीजिये। यदि सम्मुख आना ही हो तो धनुष से प्रत्यंचा हटाकर केवल शोभार्थं[1] धनुष लिये हुए पधारने की कृपा करें ॥ ५१ ॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽअस्तु भगवः ।

यास्ते सहस्रꣳहेतयोन्न्यमस्मन्निवपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

घातादि अनेक उपद्रवों को नष्ट करने वाले, शुद्धस्वरूप वाले हे भगवन्! आपको वार-वार प्रणाम है। हे रुद्रदेव! आपके जो असंख्य आयुध हैं, वे सब हमको त्याग कर अन्यत्र उपद्रवियों एवं अत्याचारी शत्रुओं पर गिरें, अर्थात् अभक्तों को मारें, भक्तों को नहीं ॥ ५२ ॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तवहेतयः ।

तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥

हे रुद्रदेव! आप षडैश्वर्यसम्पन्न (भगव) भगवान् हैं—जगत्पति हैं। आपके हाथों में असंख्य आयुध हैं। उन संहारकारी शस्त्रास्त्रों के मुख हमसे सर्वदा पराङ्मुख रहें। अर्थात् आप के आयुध हमारे ऊपर प्रयुक्त न हों—ऐसी कृपा करें ॥ ५३ ॥

[2]असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽअधिभूम्याम् ।

तेषाꣳसहस्रयोजने वधन्वानितन्मसि ॥ ५४ ॥

हे प्रभो! सहस्रों [2]असंख्य रुद्र जो इस भूमि के ऊपर अवस्थित हैं, उनके धनुषों को हमसे सहस्रों योजन दूर (मंत्र बल से) कर देवें ॥ ५४ ॥

अस्मिन्महत्त्यर्णवेन्तरिक्षेभवाऽअधि ।

तेषाꣳसहस्रयोजनेवधन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

---

१. ज्या शरहीनं धनुर्मात्रं शोभार्थं धारयन्नागच्छेत्यर्थः ।

२. यहां से ये १० मंत्र 'सहस्र योजन' वाले हैं। जो दशो दिशाओं में स्थित १० रुद्र के द्योतक या प्रतीक हैं। सुतराम् निम्नलिखित मन्त्रों से रुद्र का असंख्यत्व अथवा एक रुद्र का असंख्य वस्तुओं में व्यापकत्व सिद्ध हुआ। श्रुति भी कहती है—"एको रुद्रो न द्वितीयः।"

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस विशाल अन्तरीक्ष में 'आकाशगंगा' के नाम से विख्यात जो नक्षत्र-पुंज (जलार्णव) दृष्टिगोचर होते हैं, उनके सम्पूर्ण धनुष हमसे सहस्रों योजन दूर प्रत्यंचारहित कर देवें ॥ ५५ ॥

नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्राऽउपश्रिताः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ५६ ॥

स्वर्ग में स्थित जो रुद्र कहीं नक्षत्र-पुंज के कारण श्वेतकण्ठ वाले हैं तथा कहीं मेघ के कारण किंवा विषपान के कारण 'नीलकण्ठ' वाले हैं, उनके धनुषों को हमसे सहस्रों योजन दूर कर देवें ॥ ५६ ॥

नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्व्वा अधः क्षमाचराः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ५७ ॥

'नीलग्रीव' तथा 'शितिकण्ठ' नामधारी रुद्र जो पाताल में उपस्थित रहते है, उनके धनुषों को प्रत्यंचाहीन करके हमसे सहस्रों योजन दूर (मंत्रबल से) निक्षिप्त करिये ॥ ५७ ॥

ये व्वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्ग्रीवा विलोहिताः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ५८ ॥

जो नूतन तृणतुल्य हरित वर्णवाले, नीलकण्ठ किंवा लोहित वर्णवाले पवित्र अश्वत्थादि वृक्षों में विद्यमान रहते हैं, उनके समस्त आयुध हमसे सहस्रों योजन दूर रहें—यही कृपा करें ॥ ५८ ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्द्दिनः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजने वधन्न्वानि ऽतन्न्मसि ॥ ५९ ॥

हे परमात्मन् ! जो रुद्रदेव समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित रहकर कभी मुण्डित रूप से अथवा कभी जटिल रूप से जटाधारी बनकर विराजते रहते हैं, उनके सभी धनुष हमलोगों से सहस्रों योजन दूर फेंक देवें ॥ ५९ ॥

ये पथाम्पथिरक्षयऽऐलबृदाऽआयुर्युधः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ६० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो वैदिक एवं लौकिक मार्गों के अधिष्ठाता होते हुए, सम्पूर्ण जगत् के रक्षक तथा भूतल पर उत्पन्न अन्नादिकों से सभी जीवों—विशेषकर मानवों के प्रतिपालक हैं, जो जीवनपर्यन्त शत्रुओं एवं दानवों से युद्ध करते रहते हैं, उन रुद्र प्रभु के धनुष को हमसे सहस्रों योजन दूर करें ॥ ६० ॥

ये तीर्त्थानि प्प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषाᳬं सहस्रयोजनेऽवधन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ६१ ॥

जो रुद्र हाथ में ढाल-तलवार तथा त्रिशूल धारण करके काशी-प्रयाग आदि तीर्थों में भ्रमण करते हुए धर्म का प्रचार करते हैं, उनके सम्पूर्ण आयुध (धनुष) हमसे सहस्रों योजन दूरी पर रहें ॥ ६१ ॥

येऽन्नेषु व्विविद्ध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषाᳬं सहस्रयोजनेऽवधन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ६२ ॥

जो रुद्र देवगण अन्नादि भोजन करने के कारण अनेक व्याधियों की उत्पत्ति द्वारा प्राणियों को प्रताड़न करते हैं अर्थात् धातु-वैषम्य द्वारा स्वभावतः रोग उत्पन्न करते हैं। साथही पात्रस्थ दुग्ध आदि पीते हुए भो विविध व्याधिग्रस्त करते हैं, उनके धनुषों की प्रत्यंचा को हमसे सहस्रों योजन दूर कर देवें ॥ ६२ ॥

यऽएतावन्तश्श्च भूयाᳬंसश्श्च दिशो रुद्द्रा व्वितस्थिरे ।
तेषाᳬं सहस्रयोजनेऽवधन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ६३ ॥

हे प्रभो ! जो रुद्रदेवता दशों दिशाओं में उपर्युक्त गुणविशिष्ट हैं तथा उनसे भी अधिक गुणवाले होकर सर्वत्र दिशाओं में अभिव्याप्त हैं, अथवा जिनका प्रयोग उपर्युक्त मन्त्रों में नहीं हुआ है, उन सभी (गुप्त या प्रकट) रुद्रों के समस्त आयुध मन्त्रबल के द्वारा हमसे सहस्रों योजन दूरी पर फेंक देवें ॥६३॥

नमोऽस्तु रुद्द्रेब्भ्यो ये दिवि येषां व्वर्षमिषवः । तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्द्ध्वाः । तेब्भ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्द्विष्मो यश्श्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दद्ध्मः ॥

त्रिलोकस्थित जो रुद्र द्युलोक में वर्तमान हैं, जिनकी वृष्टि ही बाण है, उन रुद्रों को प्रणाम है। अर्थात् जो रुद्र स्वल्प—वृष्टि से सृष्टि, मध्यवृष्टि से रक्षा एवं अतिवृष्टि से संहार करते हैं, उन्हें प्रणाम है। साथ ही चतुर्दिक् (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर) तथा ऊपर-नीचे सर्वत्र व्याप्त उन रुद्रों के निमित्त दशों अंगुलियों

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को जोड़कर (करबद्ध) प्रार्थनापूर्वक हम प्रणाम करते हैं। वे रुद्र हमलोगों की रक्षा करें। हे प्रभो ! जो लोग हमसे द्वेष करते हैं अथवा जिनसे हम द्वेष रखते हैं, वे सभी प्रकार के शत्रु रुद्रों के विकराल मुख में पड़ें। अर्थात् आप हमारी रक्षा करें तथा हमारे शत्रुओं का संहार कर डालें ॥ ६४ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ॥ तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥

अन्तरिक्ष में रहनेवाले वायु रूपी रुद्र देवता जो अन्न-भक्षण के कारण शरीर में वातरोग उत्पन्न करके प्राणियों के प्राणों का अपहरण करते हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है। जो पूर्ववत् दशों दिशाओं में व्याप्त रहते हैं, उनके लिए हमारा करबद्ध प्रणाम स्वीकृत हो ॥ ६५ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ॥ तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो रुद्र भूमण्डल पर विद्यमान हैं; जिनके वाण अन्न हैं; क्योंकि अन्नद्वारा ही सृष्टि, रक्षा एवं प्रलय होता है। अर्थात् उपयुक्त सेवन से शरीर की रक्षा तथा वृद्धि ही होती है; परन्तु जो अधिक एवं निषिद्ध अन्नों का सेवन करके अनेक रोगों के शिकार बनाते हैं—अर्थात् मिथ्याहार–विहार से प्राणियों का जो संहार करते हैं, वे दशों दिशाओं में व्याप्त रुद्रदेव हमारी सर्वत्र रक्षा करें। बस, यही अन्तिम प्रार्थना है ॥ ६६ ॥

नोट—अद्वैत भाव से सर्वत्र व्याप्त रुद्र देवता की जो उपासना वैदिक विधि से करता है, उसके सभी उपद्रव (अनिष्ट) दूर होकर सकल मनोरथ (अभीष्ट) पूर्ण होते हैं। इस विराट् रुद्र (ब्रह्म) के वर्णन का मुख्य प्रयोजन यही है।

इति श्रीगार्ग्यमुनि 'द्विजेन्द्र' कविकृत 'रुद्रप्रिया' भाषाव्याख्या सहित रुद्राष्टाध्यायी का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ षष्ठोऽध्यायः

हरिः ॐ । व्वयᳯसोमव्व्रतेतवमनंस्तनूषुविभ्रंतः । प्रजावन्तᳯ सचेमहि ॥ १ ॥

हे सोमदेव ! हम सब (यजमान) आपके व्रतसे सम्बन्धित हैं और पार्थिव शरीर में—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था में—रहते हुए, आपकी ही अनुकम्पा से पुत्र-कलत्रादि से युक्त होकर आपकी सेवा में लगे रहते हैं ॥ १ ॥

एषतेँ रुद्रभागःसहस्वस्राऽम्बिकयातञ्जुंषस्वस्वाहैषतेँरुद्रभागऽ-आखुस्तेंपशुः ॥ २ ॥

वेद–विरोधी एवं अन्यायी पापियों को रुलानेवाले हे रुद्रदेव ! आप हमारे दिये हुए इस पुरोडाश को स्वीकार करें । क्योंकि अपनी भगिनी स्वरूपा अम्बिका भगवती के साथ आप इस पुरोडाश (हव्यभाग) को ग्रहण करने योग्य हैं । अथवा अपने फैलाये (छीटे) हुए इस पुरोडाश को हमलोग आपके निकटवर्ती विलमें रहनेवाले चूहों (मूसों) को देकर उन्हें रक्षा करते हैं; क्योंकि वे शारदीय बीमारी के कीड़ों को खा जाते हैं । साथही इस अतिरिक्त पुरोडाश के दान से प्रसन्न मूषक अम्बिका देवीद्वारा मारे जाने वाले पशुओं को बचाते हैं, इसलिये ऐसी अम्बिका देवी एवं रुद्र प्रभु भी इस हवि के द्वारा सुशान्त होवें ॥ २ ॥

नोट—वर्षा के बाद शरद ऋतु के आते ही अनेक प्रकार के आगन्तुक रोग उत्पन्न होते हैं । उस समय रुद्र की बहन 'अम्बिका' नाम से प्रसिद्ध जो देवी हैं, उनकी आराधना करनी चाहिये । प्राचीन काल में शरद ऋतु से ही नवीन वर्ष आरम्भ होता था । जिसके कारण "जीवेम शरदः' शतम्" कहा गया है । पार्थिव जगत् में विशेष परिवर्तन के भी चिह्न इन्हीं दिनों में दृष्टिगोचर होते हैं । ज्वर-प्रकोप किंवा 'अम्बिका–प्रकोप' प्रत्यक्ष होने के कारण ही मानों अम्बाराधना (चण्डी पाठ) का विधान पाया जाता है, जिसका प्रत्यक्षीकरण वर्तमान समय का नवरात्र व्रत है । अतः नवदुर्गा पाठ, हवन-पूजन करना लोक–कल्याणकारी है ।

अवंरुद्रमंदीमह्यवंदेवन्त्र्यम्बकम् । यथानोव्वस्यंसस्करद्यथानᳯ श्रेयंसस्करद्यथानोव्व्यवसाययात् ॥ ३ ॥

इन रुद्रों को मनोयोग द्वारा भलीभांति जानकर उनकी कृपा से प्राप्त अन्न हम भक्षण करें । उन्हीं रुद्रदेव का नाम 'त्र्यम्बक' भी है; क्योंकि जिसके तीन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नेत्र हैं—भूर्भुवः स्वः इन तीनों लोकों में जिनका प्रकाश है किंवा जिनके नेत्रों से त्रिभुवन प्रकाशित है। साथही तीन वेद, तीन काल एवं त्रिदेव तथा त्रिताप भी जिसके कारण उत्पन्न होते हैं, ऐसे रुद्र भगवान् हमारी सर्वत्र सर्वदा रक्षा करें। अर्थात् जैसे हमारा कल्याण हो—वैसा विधान वे करें। इसीलिये हम उनके नामों का जप करते हैं ॥ ३ ॥

भेषजमसि भेषजङ्गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् सुखम्मेषाय मेष्यै ॥

हे रुद्रदेव! औषध के समान हमारे सभी उपद्रवों (व्याधियों) को आप निवारण करते हैं। इसलिए आप हम प्राणियों (गौ, घोड़े तथा पुत्र-पौत्र, भ्राता, बन्धु-बान्धवों) के समस्त व्याधियों को दूर करें। इसी प्रकार भेड़—बकरी आदि क्षुद्रतम जन्तुओं की भी आप रक्षा करें। अर्थात् हम सभी जीव जैसे सुखी (स्वस्थ) रहें, उस प्रकार का कुशल-क्षेम करें ॥ ४ ॥

त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्व्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीयमाऽमृतात् ॥
त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम् ।
उर्व्वारुकमिवबन्धनादितोमुक्षीयमामुतः ॥ ५ ॥

दिव्यगन्ध से युक्त अर्थात् केसर-कस्तूरी के साथ मलय-चन्दन-चर्चित आध्यात्मिक दृष्टि से मर्त्यधर्मविहीन (अजर-अमर) तथा पौष्टिक पदार्थों से युक्त (धन-धान्यप्रवर्द्धक) उभय लोक में फल देनेवाले त्र्यम्बक (त्रिनेत्र) भगवान् शङ्कर जी को हमलोग प्रणामपूर्वक पूजते हैं। क्योंकि वे रुद्रदेव (शिवजी) हमें अपमृत्यु (अकालमृत्यु) से बचाते हैं—'संसार से मुक्त करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार से ककड़ी आदि फल परिपक्व हो जानेपर स्वयं ही अपनी ग्रन्थी से छूट कर पृथक् हो जाते हैं', उसीप्रकार सदाशिव रुद्रप्रभु की कृपा ते भक्तजन सांसारिक बन्धन से छूट जाते हैं।

इसी प्रकार 'पति' चाहनेवाली कुमारियाँ भी कहती हैं कि हे रुद्रदेव! सद्गुण रूपी सुगन्ध-युक्त उभय लोक में अभ्युदय देनेवाले उस शिवजी को मैं

---

१. उपर्युक्त मन्त्रों द्वारा मनुष्य के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। घर में पशुओं की बीमारी दूर करने एवं सुरक्षित रखने का यह परम औषध रूप मन्त्र है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निरन्तर जपती हूँ—जो संसार के आवागमन रूपी बन्धन से भक्तों को मुक्त करते हैं, वे हमें सद्गुण–विशिष्ट पति प्रदान करें तथा हे प्रभो ! जैसे फल पक जाने पर स्वयं बन्धन से छूट जाता है, वैसे ही विवाहोपरान्त हमें माता-पिता, भाई-बन्धु के बन्धन से हटाकर पतिलोक में सर्वदा रखें। तात्पर्यं यह कि हम पिता के गोत्र एवं घर को त्याग कर पति के गोत्र एवं घर में रुद्रदेव की अनुकम्पा से सर्वदा सुख-शान्ति-पूर्वक निवास करें ।। ५ ।।

एतत्तें रुद्राऽवसन्तेनंपरोमूजंवतोऽतीहि । अवंततधन्वापिनाकावसःंकृत्तिवासाऽअहिँसन्नःशिवोतीहि[१] ॥ ६ ॥

हे पूर्वोक्त गुण-विशिष्ट विभु, रुद्रदेव ! यह जो आपका अवशिष्ट अवस[२] हव्य (चरु) उपस्थित है, उसे साथ में लेकर आप 'मूजवान'[३] नामक पर्वत के उस पार चले जाइये। मार्ग में जाते समय अपने 'पिनाक'[४] नामक धनुष-वाण को छिपाकर लेते जावें, जिससे आपके भक्तजन निर्भय रहें। इसलिये धनुध को वस्त्रों से आच्छादित कर लेवें। हे प्रभो ! हमारे विरोधियों से हमें सर्वदा बचावें।

---

१. नोट—इस मन्त्र में दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध भाग ही 'मृत्युञ्जय मन्त्र' कहा गया है। यह स्मरण रहे कि इसके पूर्व में 'ॐ हौं जूं सः' बीज मंत्र रहता है और अन्त में भी सम्पुटित करने पर वह महामृत्युञ्य मंत्र कहलाता है।

अकाल मृत्यु से बचानेवाला यह अमोघ मन्त्र विशेष प्रसिद्ध है। इसका उत्तरार्द्ध कुमारियों के लिए पति प्राप्ति कराने वाला मन्त्र है। साधक को दीर्घ जीवन प्राप्त्यर्थं इस महामन्त्र द्वारा तीन दिन तक व्रत करके चरु (खीर) की सौ आहुति देनी चाहिये। इस विधान से सौ वर्ष तक जिये। प्रायः सभी प्रकार के रोगों एवं ग्रहारिष्टों की निवृत्ति वास्ते तो यह अचूक राम-बाण है।

२. 'अवस' शब्द से यहाँ तात्पर्य उस 'पाथेय' से है, जो यात्राकाल में मार्गस्थ तड़ागादि (जलाशय स्थान) के निकट बैठकर भोजन किया जाता है।

३. मूजवान्नाम काश्चित्पर्वतो रुद्रस्य वासस्थानमितितात्पर्यम्।

४. शिवजी के धनुष का नाम 'पिनाक' है। गजचर्म धारण करने से वे 'कृत्तिवास' कहे जाते हैं। पौराणिक प्रथानुसार तो पर्वतों के ऊपर मेघों में उदय होने वाले इन्द्रधनुष के पास ही रुद्र का निवास स्थान बताया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्योंकि आपको तो किसी की सहायता की आवश्यकता है नहीं। इसलिये हे गजचर्माम्बरधारी शङ्करजी ! आप हमलोगों को न मारते हुए, हमारे शत्रुओं से हमारी रक्षा जैसे ही, वैसे करें और क्रोधरहित होकर शान्तिपूर्वक तथोक्त पर्वत को अतिक्रमण कर जावें ॥ ६ ॥

[१]त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
यद्देवेषुत्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तुत्र्यायुषम् ॥ ७ ॥

हे रुद्र ! जमदग्निमुनि के बाल्य, यौवन एवं वार्द्धक्य कालीन जो आयु है तथा कश्यप (प्रजापति) की जो त्रिकाल आयु है एवं इन्द्रादि देवों की जो आयु बतायी गयी है, उतनी आयु हम यजमानों (भक्तों) की होवे। साथ ही जमदग्न्यादि ऋषियों के अवस्थाविशेष में जैसे चरित (गुण) थे, वैसे ही हमलोग भी अपने पूर्वजों के समान गुणी एवं आयुष्मान् बनें—यही प्रार्थना है ॥ ७ ॥

शिवोनामासिस्वधितिस्तेपितानमस्तेऽअस्तुमामाहिꣳसीः ।
निर्वर्त्तयाम्म्यायुषेन्नाद्यायप्रजननायरायस्पोषायसुप्रजास्त्वाय-सुवीर्य्याय ॥ ८ ॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मुण्डन करते समय नापित या आचार्यद्वारा यह मन्त्र कहा जाता है। इसमें क्षुरा एवं यजमान को सम्बोधित किया गया है। हे क्षुर ! हे वपनशस्त्र ! तुम शान्त रूप हो, तुम्हारा पिता वज्र है अर्थात् तुम लौह-वज्र की सन्तान हो। अतः तुम्हें प्रणाम है। मुझे किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाना। हे यजमान ? मैं इस क्रिया के फल स्वरूप तुम्हारे जीवन, धन-धान्य (अन्न), सन्तान, एवं सुयश प्राप्ति के लिये ही तुम्हारा 'शिरोवपन' (मुण्डन) कर रहा हूँ ॥ ८ ॥

इति श्री गार्ग्यमुनि 'द्विजेन्द्र' कविकृत 'रुद्रप्रिया' भाषा-व्याख्या सहित रुद्राष्टाध्यायी का छठाँ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

---

१. त्र्यायुषम् = त्रयाणां बाल्ययौवनवार्धक्यानाम् आयुषां समाहारः त्र्यायुषम्। इत्येवं सर्वत्र। यज्ञकरणार्थं शुभाशीर्वादात्मकश्चैषो मन्त्रो यज्ञकाले इति शेषः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ सप्तमोऽध्यायः

हरिः ॐ । उग्रश्श्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ १ ॥

१ उग्र (उत्कृष्ट) २ भीम (जिससे भय लगे) ३ ध्वान्त (ध्वनि करनेवाला शब्द), ४ धुनि (कँपानेवाला), ५ सासह्वान् (शत्रुओं को दबाने वाला), ६ अभियुग्वा (प्रत्यक्ष योग को प्राप्त करनेवाला किंवा योगसिद्ध) और ७ विक्षिप्त (अनेक प्रकार के शत्रुओं के नाशक)—इन सात प्रकार के वायुदेवता के लिये हम जो आहुति देते हैं, वह भलीभांति स्वीकृत हो ॥ १ ॥

अग्निँ हृदयेनाशनिँ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवँ यक्ना । शर्वम्मतस्नाभ्यामीशानम्मन्युना महादेवमन्तः पर्शव्येनोग्रन्देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥ २ ॥

अपने शरीर के हृदय भाग से अग्नि देवता को मैं प्रसन्न करता हूं। हृदयाग्रभाग से अशनि देवता को, समस्त हृदय से पशुपतिदेव को तथा यकृत (प्लीहा) द्वारा प्रभव देवता को मैं प्रसन्न करता हूं। हृदयस्थ (हड्डी) विशेषों द्वारा शर्वदेव को तथा क्रोधाधार द्वारा ईशान 'देव' को प्रसन्न करता हूं। साथ ही अगल-बगल के मध्यगत-मांस से महादेव को प्रसन्न करता हूं, स्थूलाग्नि से उग्र देवता को प्रसन्न करता हूं। इसी प्रकार कपोल के एक देश किंवा अधोदेश तथा हृदय कोश में स्थित मांस-पिण्डों द्वारा शिंगी देवता को प्रसन्न करता हूं और अपने हनु (ठुड्डी) द्वारा अवशिष्ट देवता को प्रसन्न करता हूं ॥ २ ॥

उग्रँल्लोहितेन मित्रँ सौव्रत्येन रुद्रन्दौर्व्रत्येनेन्द्रम्प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा । भवस्य कण्ठ्यँ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यम्महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥ ३ ॥

लोहित (रक्तमांस) द्वारा में उग्रदेव को प्रसन्न करता हूं। सदाचार-परायणव्रतों द्वारा मित्रदेव (सूर्य) को प्रसन्न करता हूं। अपने कदाचारपूर्ण व्रतों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्वारा रुद्र देवता को प्रसन्न करता हूँ। अपने उत्तम क्रीड़ाओं (खेलों) से इन्द्र देव को प्रसन्न करता हूँ। अपने बल-सामर्थ्य द्वारा मरुद् देव को प्रसन्न करता हूँ। अपनी हार्दिक प्रसन्नता द्वारा मैं साध्य देवों को प्रसन्न करता हूँ। अपने कण्ठस्थित मांसों द्वारा शिव भगवान् को प्रसन्न करता हूँ। अपने अगल-बगल के मांसों द्वारा रुद्रदेव को प्रसन्न करता हूँ। यकृत् के रक्त द्वारा महादेव को प्रसन्न करता हुं। स्थूलान्त्र द्वारा शर्वदेव को तथा हृदयाच्छादित नाडीगत झिल्लियों द्वारा पशुपति देव को प्रसन्न करता हूँ ।। ३ ।।

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा। माᳬसेभ्यः स्वाहा माᳬसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ।। ४ ।।

व्यष्टिगत किंवा समष्टिगत सभी लोमों (रोओं) के लिये यह सुन्दर हवन हो। इसी प्रकार त्वचा (चर्म), लोहित (रक्त), मेदा (चर्वी) मांस, स्नायुओं (नसों) अस्थियों (हड्डियों), मज्जा, वीर्य तथा पायु (गुदा) आदि के निमित्त हमारे दिये हुए ये सुन्दर हवन स्वीकृत हों ।। ४ ।।

नोट—इस प्रकार सर्वाङ्गों द्वारा समस्त देवताओं को प्रसन्न करना अभीष्ट है। इससे सर्वस्व त्याग की भावना सिद्ध हुई। इस मन्त्र में स्थानगत रुधिर के गुण कहे गये हैं।

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ।। ५ ।।

१ आयास, २ प्रायास, ३ संयास, ४ वियास, ५ उद्यास, ६ शुचदेव, ७ शोचन देव, ८ शोचमान एवं ९ शोकसंज्ञक देवविशेषों के निमित्त दिये हमारे ये सुन्दर हवन स्वीकृत हों ।। ५ ।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तपसेस्वाहा तप्प्यतेस्वाहातप्प्यमानायस्वाहातप्तायस्वाहाघर्म्मायस्वाहा । निष्कृत्यैस्वाहाप्प्रायश्चित्त्यैस्वाहाभेषजायस्वाहा ॥ ६ ॥

तप के निमित्त यह सुन्दर हवन मैं करता हूँ। इसी प्रकार तप करनेवाले, तपस्वी, धर्म, निष्कृति, प्रायश्चित्त एवं भेषज (औषधों) के लिये मेरी दी हुई यह हवि विधिवत् स्वीकृत हो ॥ ६ ॥

यमायस्वाहान्तकायस्वाहा मृत्यवेस्वाहा । ब्रह्मणेस्वाहाब्ब्रह्महत्यायस्वाहाव्विश्श्वेब्भ्योदेवेब्भ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬस्वाहा ॥७॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

यमराज, अन्तक (काल), मृत्यु, ब्रह्म, ब्रह्महत्या एवं विश्वेदेवों आदि के लिये मैं यह हवन करता हूँ। साथ ही भूलोक से द्युलोक पर्यन्त सभी देवताओं के निमित्त समर्पित यह पूर्णाहुति सम्यक् प्रकार से स्वीकृत हो ॥ ७ ॥

नोट—यजमान को चाहिये कि वह उदुम्बर या शमीकाष्ठ-निर्मित बृहद्-स्रुवा में गोघृत भरकर अविच्छिन्न धारा द्वारा वसोर्धारा (घृतधारा) पांचवार खड़े होकर अग्नि में देकर विधिवत् पूर्णाहुति करे और प्रार्थना करे।

इति श्रीगार्ग्यमुनि 'द्विजेन्द्र' कविकृत 'रुद्रप्रिया' व्याख्यासहित
रुद्राष्टाध्यायीका सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथाष्टमोऽध्यायः

हरिः ॐ । वाजश्च मेप्रसवश्चमेप्रयतिश्चमेप्रसितिश्चमेधीतिश्चमेक्रतुश्चमेस्वरश्चमेश्लोकश्चमेश्रवश्चमेश्रुतिश्चमेज्योतिश्चमेस्वश्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ १ ॥

हे रुद्ररूप अग्निदेव ! इस यज्ञ के फलस्वरूप आप मेरे लिये प्रसन्न हों और यह यज्ञ मुझे 'वाज' (अन्न) आदि देनेवाला हो । इसी प्रकार अन्नदान की अनुज्ञा, शुद्धि, अन्न सम्बन्धी उत्कण्ठा, ध्यान, विचार, सत्संकल्प, सुन्दर शब्द, श्लोक (स्तुति), वेदमन्त्र तथा श्रवणशक्ति, प्रकाश (तेज) एवं स्वर्ग प्राप्त करने की शक्ति मुझे इस यज्ञद्वारा प्राप्त हो ॥ १ ॥

प्राणश्च मेऽपानश्चमेव्यानश्चऽमेसुश्चमे चित्तश्चमऽआधीतश्चमेवाक्चमेमनश्चमेचक्षुश्चमेश्रोत्रञ्चमेदक्षश्चमेबलश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

ऊर्ध्व संचारी 'प्राण' वायु, शरीर में नीचे चलने वाली 'अपान' वायु, समस्त अङ्गों में व्याप्त 'व्यान' वायु, समान वायु एवं उदान वायु (पंच प्राणवायु) के सहित वाक्, मन, चक्षुः श्रोत्र, वक्षःस्थल तथा बल-आदि बाहरी-भीतरी सभी इन्द्रियों में शक्तिपूर्वक कार्य करने की कुशलता इस यज्ञानुष्ठान द्वारा मुझे प्राप्त हों ॥ २ ॥

ओजश्च मेसहश्चमऽआत्माचमेतनूश्चमेशर्म्मचमेवर्म्मचमेङ्गानिचमेस्थीनिचमेपरूंषिचमेशरीराणिचमऽआयुश्चमेजराचमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे परमात्मन् ! बलबर्धक आठवीं धातु, शत्रु-दमन करने वाला शारीरिक बल, आत्मज्ञान, सुन्दर देह, सौख्य, कवच, कर-चरणादि देहावयवों की दृढ़ता, हड्डियां, अंगुलियों की पर्वपुष्टि, स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, शतायुस्त्व आदि इस यज्ञ द्वारा मुझे प्राप्त हों—ऐसी कृपा करें ॥ ३ ॥

ज्ज्यैष्ठ्यंञ्च मऽआधिपत्त्यञ्चमेमन्न्युश्श्चमेभामश्श्चमेमंश्श्चमेऽम्भं-श्श्चमेजेमाचंमेमहिमाचंमेवरिमाचंमेप्प्रथिमाचंमेवर्षिमाचंमेद्द्राघिमाचं-मेव्वृद्धञ्चंमेव्वृद्धिश्श्चमेयज्ञेनंकल्प्पन्ताम् ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! इस संसार में सर्वश्रेष्ठत्व, स्वामित्व, मानसिक क्रोध या बाह्य क्रोध, गम्भीरता, असीम सुख, मधुर एवं शीतल जल, विजयशक्ति, महत्व (बड़ाई) पुत्र-पौत्रादि वंश-परम्परा, गृह-क्षेत्रादि, दीर्घजीवन, धन-धान्य-सम्पन्नता, विद्या यशोगुण की उत्कृष्टता आदि सभी इस यज्ञद्वारा मुझे प्राप्त हों ॥ ४ ॥

सत्त्यञ्चं मेश्रद्धाचंमेजगंच्चमेधनञ्चमेविश्श्वञ्चमेमहश्श्चमेक्रीडाचं-मेमोदश्श्चमेजातञ्चंमेजनिष्ष्यमाणञ्चमेसूक्तञ्चंमेसुकृतञ्चमेयज्ञेनंकल्प्प-न्ताम् ॥ ५ ॥

साथ ही यथार्थ-भाषित्व, परलोक में श्रद्धा-विश्वास, गौ आदि पशुधन, सुवर्ण आदि विभव, गृह-वृक्षादि स्थावर धन, तेज, क्रीडादि मोदवर्धक तीर्थदेव-दर्शनद्वारा प्रसन्नता तथा पुत्र-कलत्र-जन्य सांसारिक सुख, वेद-शास्त्राध्ययन से शुभफल, आदि मुझे इस यज्ञद्वारा प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

ऋतञ्चं मेऽमृतञ्चऽमेयक्ष्मञ्चऽमेनामयच्चमेजीवातुश्चमेदीर्घायुत्त्व-ञ्चंमेनामित्रञ्चमेभयञ्चमेसुखञ्चंमेशनयञ्चमेसूषाश्चंमेसुदिनञ्चमेयज्ञेनंक-ल्प्पन्ताम् ॥ ६ ॥

यज्ञादि कर्मों के अमृतोपम स्वर्गादि फल, धातुक्षयादि राजरोगों का सर्वथा अभाव, सामान्य व्याधियों का अभाव तथा व्याधिनाशक मन्त्र-महौषधों का ज्ञान, शत्रुओं का विनाश, निर्भयता, परमानन्दत्व तथा सुन्दर शय्यादि सुख, सन्ध्यादि नित्यकर्म युक्त सुप्रभात (प्रातः सन्ध्या काल की प्राप्ति) यज्ञ-दान एवं तपोऽध्ययन-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वाध्याय सहित सम्पूर्ण सौख्य—ये सभी इस यज्ञ देवता की कृपा से मुझे प्राप्त हों ॥

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

अश्व-गजादि-नियन्तृत्व, प्रजापालनपूर्वक नेतृत्व, धनोपार्जन, रक्षण-शक्ति, आपत्ति में धैर्य, (सम्पत्ति में क्षमा) सबके अनुकूल रहना, देवार्चन एवं वेद-शास्त्राध्ययन में अभिरुचि, ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति, पुत्रादि में आदेश प्रदान की शक्ति, पुत्रोत्पादन-सामर्थ्य, कृषिद्वारा धन-धान्य-वृद्धि, कृषि के प्रतिबन्धकों की निवृत्ति, अनावृष्टि का अभाव—आदि सभी फल मुझे इस यज्ञद्वारा प्राप्त हों ॥७॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

हे देव ! ऐहिक तथा पारलौकिक सुख, प्रीति-वर्द्धक वस्तुओं की प्राप्ति, अनुकूलता, विषयादिजन्य सुखप्राप्ति, कायिक, मानसिक एवं वाचनिक स्वस्थता, सौभाग्यवर्द्धन, धनसौख्य, लोक-परलोक में कल्याण प्राप्ति, धन-धान्य-गृहादि-सौख्यपूर्वक संसार में सुयश प्राप्ति आदि सुफलों से यज्ञदेवता मुझे सर्वदा सन्तुष्ट रखें—यही प्रार्थना है ॥ ८ ॥

ऊर्क्च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म ऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

अन्न एवं सत्य प्रियवाणी, दुग्ध-दधि-घृत-मधु-सहित सरस भोजन, बन्धु-बान्धवों के साथ सहभोज का सौभाग्य प्राप्त होते रहना, कृषिद्वारा धान्यवृद्धि, यथासमय यथोचित वृष्टि, आम्र आदि वृक्षों की उत्पत्ति आदि इस यज्ञद्वारा मुझे यज्ञदेवता प्रदान करें ॥ ९ ॥

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुवर्ण, मुक्तामणि, धन-कोष एवं शरीरकोश की वृद्धि, व्यापक शक्ति, धन-वैभव की प्राप्ति, पुत्र-कलत्र-सौख्य, गजाश्व-गो-पशुवृद्धि तथा छोटे-मोटे सभी प्रकार के अन्न, सभी प्रकार के धान-चावल एवं ओदन आदि की प्राप्ति, अन्न-परिपाक, आदि सभी मुझे इस यज्ञद्वारा प्राप्त होवें ॥ १० ॥

व्वित्तञ्च मेव्वेद्यञ्चमेभूतञ्चमेभविष्ष्यच्चमेसुगञ्चमेसुपत्थ्यञ्च-मऽऋद्धञ्चमऽऋद्धिश्चमेक्लृप्तञ्चमेक्लृप्तिश्चमे मतिश्चमेसुमतिश्चमे-यज्ञेन कल्प्पन्ताम् ॥ ११ ॥

पूर्वजन्मार्जित धन, वर्तमान प्रतिदिन प्राप्त होनेवाले धन, भूत-भविष्य, वर्तमान में होने वाले क्षेत्रादि वैभव, सुखमय निवासस्थान, सुन्दर देश-काल प्राप्त यज्ञ-फल, तदुपयुक्त समृद्धि, कार्यसाधक साधन-सामर्थ्य प्राप्ति तथा अघट, दुर्घट किंवा सुघटनाओं का निश्चय ज्ञान—ये सब मुझे यज्ञ-पुरुष की कृपा से शीघ्र प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

व्व्रीहयश्च मेयवाश्चमेतिलाश्चमेमुद्गाश्चमेखल्वाश्चमेप्रि-यङ्गवश्चमेणवश्चमेश्यामाकाश्चमेनीवाराश्चमेगोधूमाश्चमेम-सूराश्चमेयज्ञेन कल्प्पन्ताम् ॥ १२ ॥

हे प्रभो ! इस यज्ञ से देवता लोग मुझे अनेक प्रकार के धान, यव (जौ), माष (उरिद), तिल, मूँग, चना-मटर, टाँगुन-सँवा, कोदो (ग्रामीण अन्न), वन्यधान्य (तिन्ना आदि), गेहूँ तथा मसूर आदि विविध प्रकार के अन्न प्रदान करें ॥ १२ ॥

अश्मा च मेमृत्तिकाचमेगिरयश्चमेपर्वताश्चमेसिकताश्चमेवनस्प्प-तयश्चमेहिरण्यञ्चमेयश्चमेश्यामञ्चमेलोहञ्चमेसीसञ्चमे-त्रपुंचमेयज्ञेन कल्प्पन्ताम् ॥ १३ ॥

इस यज्ञ से देवता लोग मुझे पाषाण (पत्थर), मिट्टी, गोवर्धन आदि छोटे-छोटे पर्वत, हिमालय आदि बड़े-बड़े पर्वत बालुकाएँ, वनस्पतियां (जड़ी-बूटियां), सोना, चाँदी, ताम्बा, लोहा, सीसा, रांगा आदि अष्ट धातुएँ प्रदान करें ॥ १३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अग्निश्च मऽआपश्चमेव्वीरुधश्चऽमओषधयश्चमेकृष्टपच्च्याश्चमेऽकृष्टपच्च्याश्चमेग्राम्म्याश्चमेपशवऽआरण्ण्याश्चमेव्वित्तश्चमेव्वित्तिश्चमेभूतश्चमेभूतिश्चमेयज्ञेन कल्प्पन्ताम् ॥ १४ ॥

हे रुद्रप्रभो ! भूमिस्थ अग्नि, आकाशस्थ जल (मेघवृष्टि), पुष्पयुक्त लताएँ, परिपक्व फल सहित आम्र, पनस आदि वृक्ष, कृषिद्वारा प्राप्त होनेवाले विविध प्रकार के धान्य तथा विना जोते-वोये उत्पन्न होने वाले नीवार (तिन्नी) प्रभृति धान्य, ग्राम्य पशु (गो, अश्व, भैंस, बकरी, भेंड़, कुत्ते, बिल्ली आदि) वनैले जन्तु (सिंह, मृग, हाथी आदि), पूर्वार्जित धन, वर्तमान उद्योग द्वारा प्राप्त धन एवं दैवात् प्राप्त भविष्य धन, पुत्र-पौत्रादि की वृद्धिपूर्वक सब प्रकार के वैभव मुझे इस यज्ञद्वारा प्राप्त हों ॥ १४ ॥

वसुच मेव्वसतिश्चमेकर्म्मचमेशक्तिश्चमेर्थश्चमऽएमश्च्चमऽइत्याचमेगतिश्चमेयज्ञेन कल्प्पन्ताम् ॥ १५ ॥

इसी प्रकार धन-धान्य, धाम (निवास के लिये गृह) अग्निहोत्रादि कर्म करने की शक्ति, मनोऽभिलषित पदार्थ प्राप्ति तथा इष्ट-प्राप्ति का उपाय एवं गति (मोक्ष) भी इस यज्ञद्वारा मुझे प्राप्त हों ॥ १५ ॥

अग्निश्च मइन्द्रश्चमेसोमश्चमऽइन्द्रश्चमेसविताचमऽइन्द्रश्चमेसरस्वतीचमऽइन्द्रश्चमेपूषाचमऽइन्द्रश्चमेबृहस्प्पतिश्चमऽइन्द्रश्चमे यज्ञेन-कल्प्पन्ताम् ॥ १६ ॥

हे प्रभो ! इस यज्ञद्वारा मुझे अग्नीन्द्र, सोमेन्द्र, सवितेन्द्र, सरस्वतीन्द्र, पूषेन्द्र, बृहस्पतीन्द्र, प्राप्त हों । अर्थात् अग्निरूपी इन्द्र मुझपर प्रसन्न हों । इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये ॥ १६ ॥

नोट—मंत्र १६, १७, १८ में सर्वत्र देवताओं के साथ 'इन्द्र' शब्द आया है । इसका तात्पर्य उवटाचार्य ने अर्धेन्द्र द्वारा प्रकट किया है, अर्थात् आधे में इन्द्र हैं और आधे में तथोक्त देवता हैं । पर यास्काचार्य ने 'इन्द्र' के अनेक अर्थ बताये हैं । मेरे विचार में निष्कर्ष यह निकला कि अन्य देवताओं के साथ 'इन्द्र'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को भी रखना एक प्रकार से उनका पर्यायत्व-बोधक ही सिद्ध होता है। यथा—"अग्निश्च मे इन्द्रश्च मे, सोमश्च मे इन्द्रश्च मे"। सुतराम् अग्निरूपी इन्द्र तथा तथा सोमरूपी इन्द्र इस यज्ञ से प्रसन्न होवें—यह तत्त्वार्थ निकला।

मि॒त्रश्च॑ म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ वरु॑णश्च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे धा॒ता च॑ म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ त्वष्टा॑ च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ त्वष्टा॑ च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ त्वष्टा॑ च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे म॒रुत॑श्च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ विश्वे॑ च मे दे॒वाऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त रीत्या यहां भी मित्र (सूर्य), वरुण, धाता, त्वष्टा (विश्वकर्मा), मरुत् (वायु) तथा विश्वेदेवरूपी इन्द्र इस यज्ञद्वारा मुझे प्राप्त हों ॥ १७ ॥

पृ॒थि॒वी च॑ म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ऽन्तरि॑क्षश्च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ समा॑श्च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ नक्ष॑त्राणि च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे॒ नक्ष॑त्राणि च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे दिश॑श्च म॒ऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

इस यज्ञ के फलस्वरूप देवगण मुझे भूमण्डल के इन्द्र, अन्तरिक्ष के इन्द्र, द्युलोक के इन्द्र, मेघ के स्वामी (वर्षाधिष्ठातृ देवता रूपी इन्द्र) नक्षत्र-मण्डल के इन्द्र, दिक्पति, इन्द्ररूपी ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ १८ ॥

अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधिपतिश्च म उपा॒ꣳशुश्च॑ मेऽन्तर्या॒मश्च॑ म ऽऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ म॒ ऽआश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्र॒स्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १९ ॥

हे रुद्रदेव ! इस यज्ञ के फलस्वरूप मुझे अंशु (सुधांशु), रश्मि (सहस्र-रश्मि), अदाभ्य, अधिपति (निग्राह्य ग्रह), उपांशु, अन्तर्याम, ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण, आश्विन, प्रतिप्रस्थान, शुक्र तथा मन्थीग्रह[1] प्रदान करें ॥ १९ ॥

आ॒ग्र॒य॒णश्च॑ मे वैश्वदे॒वश्च॑ मे ध्रु॒वश्च॑ मे वैश्वान॒रश्च॑ म ऽऐन्द्राग्नश्च॑ मे म॒हावै॑श्वदेवश्च मे मरुत्व॒तीया॑श्च मे॒ निष्के॑वल्यश्च मे सावि॒त्रश्च॑ मे सारस्व॒तश्च॑ मे पात्नीव॒तश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

---

१. ये द्वादश ग्रह-यज्ञ के 'ग्रहपात्र' कहे जाते हैं। इसी प्रकार आग्रयण-आदि भी बारहों यज्ञ-देवता हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आग्रयण, वैश्वदेव (प्रातः सवनगत), ध्रुवग्रह, वैश्वानर, ऐन्द्राग्न, महावैश्वदेव, मरुत्वतीय[1], निष्कैवल्य, सावित्र, सारस्वत, पात्नीवत तथा हारियोजन इत्यादि द्वादश यज्ञग्रह मुझे इस यज्ञद्वारा प्राप्त हों ॥ २० ॥

स्रुचंश्च मेचमसाश्चंमेवायव्यानिचमेद्रोणकलशश्चंमेग्रावाणश्चमेधिषवणेचमेपूतभृच्चंमऽआधवनीयंश्चमेव्वेदिंश्चमेबर्हिश्चंमेस्वगाकारश्चंमेयज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

हे परमात्मन् ! इस यज्ञद्वारा देवगण प्रसन्न होकर मुझे स्रुक्-स्रुवा, चमस (ग्रहपात्र), वायव्य (पात्रविशेष), द्रोणकलश, ग्रावाण (पत्थर), अधिषवण (सोमपात्र), आधवनीय, वेदी बर्हि (कुश), अवभृथ तथा स्वगाकार (शम्युवाक नामक पात्र) आदि द्वादश यज्ञपात्र प्रदान करें ॥ २१ ॥

अग्निश्चं मेघर्म्मश्चंमेऽर्कश्चंमेसूर्य्यश्चप्राणश्च मेऽश्वमेधश्चंमेपृथिवीचमेदितिश्चमेऽदितिश्चमेद्यौश्चंऽमेङ्गुलयःशक्क्वंरयो दिशंश्च मेयज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

इस यज्ञ से मुझे चीयमान अग्नि (अग्निष्टोमयज्ञ), प्रवर्ग्य, पुरोडाश, सूर्य, प्राण-गवामयन, अश्वमेध (प्रसिद्ध यज्ञ), पृथिवी, दिति, अदिति, द्यौ (वसु); विराट् पुरुष के अवयव, शक्तियाँ, तथा पूर्वादि दिशाएँ आदि प्राप्त हों ॥ २२ ॥

व्व्रतञ्चं मऽऋतवंश्चमेतपंश्चमेसंवत्सरश्चंमेऽहोरात्रेऽऊर्व्वष्ठीवेबृहद्रथन्तरेचंमेयज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

हे प्रभो ! इस यज्ञद्वारा मुझे व्रत-नियम (संयम) षड्ऋतुएँ (वसन्तादि) तप (कृच्छ्रचान्द्रायण आदि) संवत्सर (प्रभवादि ६० संवत्) दिन-रात, जाँघ-जानु आदि (शरीरावयव) तथा बृहद् रथतर नामक सामवेद की प्राप्ति होवे ॥२३॥

---

१. यहां बहुवचनान्त होने से इसके तीनों भेद गृहीत हैं। यथा—(१) मरुत्वतीय, (२) महामरुत्वतीय, (३) कुण्ठमरुत्वतीय।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकाचमेतिस्रश्श्चमेतिस्रश्श्चमेपञ्चचमेपञ्चचमेसप्तचमेसप्तचमेन-वंचमेनवंचमऽएकादशचमऽएकादशचमेत्रयोदशचमेत्रयोदशचमेत्रयो-दशचमेपञ्चदशचमेपञ्चदशचमेसप्तदशचमेसप्तदशचमेनवंदशचमेनवं-दशचमऽएकंविꣳशतिश्श्चमऽएकंविꣳशतिश्श्चमेत्रयोविꣳशतिश्श्चमेत्रयो-विꣳशतिश्श्चमेत्रयोविꣳशतिश्श्चमेपञ्चविꣳशतिश्श्चमेपञ्चविꣳशतिश्श्चमे-सप्तविꣳशतिश्श्चमेसप्तविꣳशतिश्श्चमेनवंविꣳशतिश्श्चमेनवंविꣳशति-श्श्चमऽएकंत्रिꣳशच्चमऽएकंत्रिꣳशच्चमऽएकंत्रिꣳशच्चमेत्रयंस्त्रिꣳ शच्चमे-यज्ञेनकल्पन्ताम्[1] (न०) ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! इस यज्ञ के द्वारा देवगण मुझे एक, तीन, पाँच, सात, नव, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह, सत्रह, उन्नीस, एक्कीस, तेइस, पचीस, सत्ताइस, उन्तीस, एकतीस

---

१ नोट—एक-दश-शत-सहस्रायुत-लक्ष-कोट्यर्बुदादीनां संख्यानां गणना गणितशास्त्रस्य महत्वयुद्बोधयति । तत्रादौ एकतो नवपर्यन्तमेव पूर्णता तस्याः संख्यातीताया मूलप्रकृतेर्देव्या इत्यलं विस्तरेण ।

वास्तव में एक से नव तक ही संख्या मूलरूप में होती है । अर्थात् 'खं ब्रह्म' इस श्रुति के अनुसार शून्य ० से ही सभी संख्या निकलकर उसीमें अन्तर्लीन हो जाती हैं । यही कारण है, जो किसी संख्या के पूर्वभूत शून्य की कोई गणना किंवा मूल्यांकन नहीं होता । हाँ, उत्तरोत्तर दक्षिणवर्ती शून्य का मूल्यांकन उपर्युक्त संख्यागणनानुसार होता है । यहांपर भी इस श्रुत्युक्त ऋचा का यही तात्पर्य है । संख्या के दो भेद हैं (१) सम, (२) विषम। इसमें विषम ग्राह्य है, समा निषिद्ध है। इसी कारण १, ३, ५, ७, ९ इत्यादि का महत्व यहां प्रकट किया गया है । दूसरा कारण यह भी है—जैसे पंचाशत वर्ण अपना एक विशेष अर्थ रखते हैं, वैसे ही पंचाशत संख्याएँ भी अपने विशेष निगूढ़ार्थ अपने में निहित रखती हैं ।

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा तैंतीस आदि संख्याएँ प्रदान करें। अर्थात् इन संख्याओं में सांकेतित[1] वस्तुएं प्राप्त हों ॥ २४ ॥

चतस्रश्च मेष्टौचमेष्टौचमेद्वादशचमेद्वादशचमेषोडशचमेषोडशचमेव्विᳪशतिश्चमेव्विᳪशति श्चमेचतुर्विᳪशतिश्चमेचतुर्विᳪशतिश्चमेष्टाविᳪशतिश्चमेष्टाविᳪशतिश्चमेद्वात्रिᳪशच्चमेद्वात्रिᳪशच्चमेषट्त्रिᳪशच्चमेषट्त्रिᳪशच्चमेचत्वारिᳪशच्चमेचत्वारिᳪशच्चमेचतुश्चत्वारिᳪशच्चमेचतुश्चत्वारिᳪशच्चमेष्टाचत्वारिᳪशच्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम्।

इस यज्ञ के फलस्वरूप मुझे चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अट्ठाइस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चौवालिस, तथा अड़तालिस संख्याएं प्राप्त हों ॥ २५ ॥

[2]त्र्यविश्च मेत्र्यवीचमेदित्यवाट्चमेदित्यौहीचमेपञ्चाविश्चमेपञ्चावीचमेत्रिवत्सश्चमेत्रिवत्साचमेतुर्य्यवाट्चमेतुर्य्यौहीचमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

इस यज्ञ से प्रसन्न होकर देवगण मुझे गोसेवा एवं गोपूजन के लिए डेढ़

---

१. यहाँ एक, दो, तीन, चार, आदि से यह संकेत प्राप्त हुआ कि एक से 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' किंवा 'एकैवाद्वितीया ब्रह्मशक्ति'। दो से 'द्वौ सुपर्णौ', तीन से 'कालत्रयमग्नित्रयं वा' चार से 'वेदचतुष्टयम्', पाँच से 'पञ्चशरः', छः से 'षड्ऋतवः', सात से 'सप्तर्षिर्वा सप्तसागरः', आठ से अष्टवसवो लोकपालाश्चेति' नव से नवाग्रहाः नवाङ्काश्चेति तात्पर्यं समझना चाहिए। इसी प्रकार अड़तालिस संख्याओं के तात्पर्य पृथक्-पृथक् होने से सांसरिक समस्त पदार्थों का संकेत मिलता है।

२. यहाँपर 'अविः' शब्द षड्मास-सूचक है। अर्थात् ६ मास के बछड़े को 'अवि' कहते हैं। त्रि + अविः = त्र्यविः = त्रयोऽवमेयो यस्य स त्र्यविः, सार्धसंवत्सरो वृषः। इत्यर्थः स्त्रीलिंग में त्र्यवी = सार्द्धैकवर्षीया गौः। एवमेव सर्वत्रोह्यम्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्षं का वृष तथा डेढ़ वर्ष की गौ प्रदान करें। इसी प्रकार दो वर्ष, ढाई वर्ष, तीन वर्ष, साढ़े तीन वर्ष के बैल एवं गाय[1] इस यज्ञद्वारा प्राप्त हों ।। २६ ।।

पष्ठवाट्च मे पष्ठौहीचमऽउक्षाचमेव्वशाचमऽऋषभश्चमेव्वेहच्चमेऽनड्वाँश्चमे धेनुश्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

इस यज्ञ के फलस्वरूप मुझे चार वर्ष का वृष एवं गौ प्राप्त हो। इसी प्रकार अभिषेक योग्य वृष (बैल) तथा वन्ध्या गौ (सेवा के लिये) प्राप्त हो। अतियुवा (प्रौढ़) बैल तथा गर्भवती (गाभिन) गौ भी इस यज्ञद्वारा मुझे मिले। अनड्वान् (गाड़ी में जोतने अथवा बोझा ढोने योग्य बैल) तथा सद्यःप्रसूता (हाल की व्यायी गौ) धेनु इस यज्ञद्वारा मुझे प्राप्त हों। अर्थात् यज्ञ-धर्म के सम्पादन में समर्थ ये गौवें मुझे मिलें--यही प्रार्थना की गयी है ॥ २७ ॥

व्वाजायस्वाहा प्प्रसवायस्वाहापिजायस्वाहाक्रतवेस्वाहाव्वसवेस्वाहाहर्प्पतयेस्वाहान्हेमुग्धायस्वाहामुग्धायवैनशिनायस्वाहाविनशिनआन्त्यायनायस्वाहान्त्यायभौवनायस्वाहाभुवनस्यपतयेस्वाहाधिपतयेस्वाहा । इयन्तेराण्मित्रायंयन्तासियमनऽउर्ज्जेत्वाव्वृष्ट्यैत्वाप्रजानान्त्वाधिपत्याय ॥ २८ ॥

प्रसंग—अब यहाँ 'वाज'[2] इत्यादि नामवाले चैत्रादि मासों के लिये हवन का विधान कहा जाता है। इसे "नामग्राह" होम-यज्ञ कहते हैं; क्योंकि इन द्वादश मासों की विशेषता प्रकट करनेवाले ये नाम हैं। अतः उन्हीं नामों से उनके गुण स्मरणपूर्वक सुन्दर घृताहुति देनी चाहिये।

(१) वाजाय (नवान्नदायक चैत्रमास के लिये) स्वाहा, (२) प्रसवाय (जल क्रीडादि युक्त वैसाख मास के लिये) स्वाहा, (३) अपिजाय (अत्यन्त

---

१. ये सब प्रकार की गौवें यज्ञसम्पादन के लिये हैं। अर्थात् उनका पूजन, अभिषेक एवं दान-सम्मान होता है, वध नहीं। 'गोमेध' तथा 'अश्वमेध' से भी तात्पर्य वध नहीं है। अथवा 'गो' माने इन्द्रियां और 'अश्व' माने पशुता = अज्ञानता का वध से तात्पर्य है—ऐसा समझना चाहिये।

२. स्वाभाविक एवं वैज्ञानिक ढंग से ये नाम विवेचनीय हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गर्मी में जल प्रिय होने के कारण ससिलस्नान युक्त ज्येष्ठ मास के लिये) स्वाहा, (४) ऋतवे (याग बाहुल्यवाले किंवा चातुर्मास्य युक्त आषाढ़ मास के लिये) स्वाहा, (५) वसवे (वसु = वरसात के कारण यात्रा निषिद्ध वाले श्रावण मास के लिये) स्वाहा (६) अहर्पतये (दिन के स्वामी तपोवर्धक सूर्यवाले भाद्रपद मास के लिये) स्वाहा, (७) मुग्धाय (तुषारारम्भ वाले आश्विन मास के लिये) स्वाहा, (८) अमुग्धाय वैनंशिनाय (स्नानादि नियम द्वारा पापनाशक अथवा दिन छोटा करनेवाले कार्तिक मास के लिये) स्वाहा, (९) अवनंशिने अन्त्यायनाय (दंशादि जन्तुओं के विनाश से पवित्र अथवा अविनाशी विष्णु भगवान् का अतिप्रियमास [1]मार्गशीर्ष के लिये) स्वाहा, (१०) अन्याय भौवनाय (दिन के अत्यन्त छोटे होने के कारण तथा रात बड़ी होने के कारण भी जठराग्नि बढ़ाकर लोकपुष्टि करनेवाले पौष मास के लिये) स्वाहा, (११) भुवनस्पतये (प्राणिमात्र के प्रतिपालक तथा स्नानादि से पुण्य[2] वर्द्धक बड़े दिन वाले माघ मास के लिये) स्वाहा, (१२) अधिपतये (हर्षोन्माद[3] वर्द्धक एवं प्रसन्नचित्त करनेवाले फाल्गुन मास के लिये) स्वाहा। उक्त प्रकार से बारहो मास के अधिठातृ देवस्वरूप 'प्रजापति' नाम के देवता के लिये 'प्रजापतये स्वाहा' इस मंत्र से हवन करना चाहिये। उस समय प्रार्थना करे—'हे प्रजापति रूप अग्निदेव ! यह सब राज्य आपका है। अतः आप यजमान के नियामक एवं रक्षक हों। 'अग्निष्टोम'[4] आदि यज्ञों के नियन्ता आप यजमान के लिये मित्र स्वरूप हों, अन्त में विशेष अन्न[5] उत्पन्न होने के निमित्त एवं यथोचित वृष्टि के लिये वसुधारा (घृतधारा) से मैं आपको सींचित करता हूँ। अर्थात् यह सर्वोत्तम अभिषेक (रुद्राभिषेक) करता हूँ ॥ २८ ॥

---

१. 'मासानां मार्गशीर्षोऽस्मि' (गीतायाम्)।

२. प्रचलित कुम्भपर्व एवं वसन्तोत्सव इसका प्रत्यक्ष प्रतीक है।

३. 'होली' पर्व ही इसका प्रतीक है।

४. यह सर्वोत्तम नित्ययज्ञ है। 'अग्निहोत्र' इसीका रूपान्तर जानना चाहिये।

५. 'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसम्भवः। अन्नाद्भवन्ति भूतानि तस्माद् यज्ञं समाचोत्।' इति स्मृतेः प्रामाण्यात्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्प्राणोयज्ञेनंकल्पताञ्चक्षुर्यज्ञेनंकल्पताᳪं-श्श्रोत्रंयज्ञेनंकल्पताम्वाग्यज्ञेनंकल्पताम्मनोयज्ञेनंकल्पतामात्मायज्ञेनं-कल्पताम्ब्रह्मायज्ञेनंकल्पताञ्ज्योतिर्यज्ञेनंकल्पताᳪंस्वर्यज्ञेनंकल्पता-म्पृष्ठंयज्ञेनंकल्पतांयज्ञोयज्ञेनंकल्पताम्। स्तोमंश्चयजुंश्चऽऋक्च सामंचबृहच्चंरथन्तरञ्चं। स्वंर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूमप्रजापतेंःप्रजा-ऽअंभूमव्वेट्स्वाहा ॥ २९ ॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अब यहाँ वसोर्धारा की समाप्ति करते हुए यजमान यज्ञपुरुष परमात्मा से प्रार्थना करता है—हे परमात्मन् ! इस यज्ञानुष्ठान द्वारा मुझे दीर्घायु प्राप्त हो। यहाँ तक कि प्राण, नेत्र, श्रोत्र, वाक् (इन्द्रियाँ), मन, आदि भी मुझे इस यज्ञदेव की कृपा से प्राप्त हों। आत्मा[1] (इन्द्रिय मनोयुक्त देह), ब्रह्मा (सद्ज्ञान प्रदाता वेद), ज्योति (स्वतः प्रकाशमान् दिव्यतेजोमय शक्ति), स्वः (स्वर्गलोक), पृष्ठ (परम सुख) तथा साक्षात् यज्ञपुरुश[2] भी मुझे इस यज्ञद्वारा प्राप्त हों। स्तोम—(त्रिवृत-पंचदश आदि), यजुः (अनियतपाद मंत्र), ऋक् (नियतपाद मंत्र), साम (गीतिप्रधान मंत्र), बृहद्रथन्तर इत्यादि सभी इस यज्ञ की कृपा से मिलें। जिससे हमलोग साक्षात् देवस्वरूप[3] होकर स्वर्गलोक में अमरत्व को प्राप्त करके, हिरण्यगर्भमय प्रजापति की प्रिय प्रजा बनें तथा अन्त में आवागमन

१. आत्मेन्द्रियमनोमुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।
२. यज्ञपुरुषो यज्ञेनैव सन्तुष्टो भवत्वित्यर्थः।
"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।" इति श्रुतेः।
३. 'देवो भूत्वा देवान् यजेत्' इति स्मृतेः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से रहित होकर ब्रह्ममय हो जाँय। इसलिये हे रुद्रदेव ! वसोर्धारा द्वारा (वषट्कारस्वरूप स्वाहा से) यह सुन्दर होम-यज्ञ[1] देवताओं को स्वीकार हो ॥ २९ ॥

इति श्रीगार्ग्यमुनि 'द्विजेन्द्र' कविकृत 'रुद्रप्रिया' भाषाव्याख्या सहित
रुद्राष्टाध्यायी का आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

---

१. प्राणिमात्र के लिये यज्ञ तथा यज्ञसाधन अत्यावश्यक हैं। इसीलिये उनका यहां वर्णन किया गया है। यज्ञ के फलस्वरूप उपर्युक्त मंत्रों में ३४७ वस्तुएं उपलब्ध होती हैं। सुतराम् अपने तथा राष्ट्र के कल्याण के लिये यज्ञ अवश्य करते रहना चाहिये।

नोट—रुद्राष्टाध्यायी का यही २९ वाँ अन्तिम मंत्र है। अतः यहीं आठो अध्याय की समाप्ति है। इसके बाद परिशिष्टाध्याय देखिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिशिष्टाध्यायः

(१) अथ शान्तिपाठः ।

हरिः ॐ ॥ ऋचंवाचम्प्रपद्येमनोयजुःप्रपद्येसामप्राणम्प्रपद्येच-क्षुःश्रोत्रंप्रपद्ये । वागोजः सहौजोमयि प्राणापानौ ॥ १ ॥

प्रसंग—इस अध्याय में यज्ञपुरुष परमात्मा के अध्यात्म-रूप का वर्णन करते हुए. आध्यात्मिक उपदेश का विवेचन किया गया है, जो वास्तव में वेद का रहस्यपूर्ण मंत्र है। गायत्री ही वेद की जननी हैं। अत एव मनोयोग द्वारा इस अध्याय का पाठ-परिशीलन करना चाहिये।

हे परमात्मन्! मैं ऋचारूपी वेदवाणी (चिद्ब्रह्मस्वरूपिणी) भगवती 'गायत्री' की शरण में हूँ। मैं यजुर्वेदरूपी मन की तथा प्राणस्वरूप सामवेद की शरण में गिरता हूँ। साथही हे प्रभो! चक्षु, श्रोत्रादि इन्द्रियोंमें मैं प्रवेश करता हूँ। इसलिये वाणी, ओज (मानसिक तेज तथा शारीरिक बल), प्राण-उदान-सम्बन्धी स्वांस-प्रस्वांस वायु स्वस्थ होकर मुझमें सर्वदा स्थित रहें—यही प्रार्थना है ॥१॥

नोट—इस मंत्र में 'वाक्' आदि से तात्पर्य है—शारीरिक सप्तदश अवयव, जो हिरण्यमय प्रजापति के लिङ्ग (चिह्न) स्वरूप हैं। अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म एवं लिङ्ग (कारण) शरीर परमात्मा की कृपा से सर्वदा सबल हों।

यन्मेच्छिद्रञ्चक्षुषोहृदयस्यमनसोवातितृण्णम्बृहस्पतिर्मेतद्दधातु । शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

हे परमात्मन्! मेरी चक्षुरिद्रिय (नेत्रों) में जो त्रुटियां हैं, अर्थात् यज्ञ करते समय मेरी इन्द्रिय, मन एवं बुद्धिद्वारा जो त्रुटि (कमी) हो गयी हो, अथवा जो कुछ अनधिकार चेष्टा मैंने की हो, उसे देवगुरु बृहस्पति क्षमा करें—मेरी व्याकुलता दूर करें। संसार के अधिपति यज्ञपुरुष हमारे ऊपर प्रसन्न हों, इस प्रकार बृहस्पति द्वारा हमारे दोष हटाकर त्रिभुवनपति यज्ञेश्वर भगवान् रुद्रदेव हमारा कल्याण करें॥ २ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

प्रसंग—यह गायत्री मंत्र मानवमात्रके लिये—विशेषकर द्विजातिमात्रके लिये तो सर्वस्व धन है। इसके ध्यान एवं स्मरणमात्र से जीव को सद्गति प्राप्त होती है। यह तीन पादवाला छन्द 'गायत्री'[1] नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि प्रणव सहित भी २४ वर्ण होते हैं, तथापि महर्षि पिङ्गलाचार्य[2] के मतानुसार 'वरेण्यम्' के स्थानपर 'वरेणियम्' कर देने से ही २४ वर्ण की पूर्ति विहित है।

अर्थात् प्रणव एवं त्रिव्याहृतियों के सहित वे सविता (सूर्य) देवता हमलोगों की बुद्धि को सत्कर्म के अनुष्ठान के लिये सर्वदा प्रेरित करें, जिन संसार की सृष्टि-स्थिति एवं लय करनेवाले, सर्वान्तर्यामी सर्वश्रेष्ठ सविता (सूर्य) देव के सर्वोत्तम त्रैलोक्यव्यापी (भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक-प्रकाशक) भर्ग (तेज) का हमलोग ध्यान करते हैं।

अथवा त्रिव्याहृतियों के सहित अर्थात् भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक में प्रकाश करनेवाले जो प्रणव जो अस्वरूप सूर्य देवता हैं, उनके उस सर्वोत्तक तेज को हमलोग सर्वदा ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को सत्कर्म में प्रेरित करते हैं ॥३॥

कयानश्चित्रऽआभुवदूती सदावृधः सखा। कयाशचिष्ठया वृता ॥

सर्वदा संवर्धनशील एवं पूज्य, सखास्वरूप इन्द्र भगवान् किस पूजा, अनुष्ठान या तप-तर्पणादि से हमलोगों के अनुकूल होंगे। अथवा हे परमेश्वर! हमलोग

---

१. गातारं त्रायते इति गायत्री, गायतस्त्रायते इति वा गायत्रीत्युच्यते।

२. 'इयादि पूरणः' (पिङ्गल्य ३ अ० २ सूत्र) के अनुसार गायत्री के प्रथम पाद 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' के स्थानपर 'तत्सवितुर्वरेणियम्' करके अष्टाक्षर द्वारा पादपूर्ति समझ लेनी चाहिये। गायत्र्या वसवः (पिं० ३-३) सूत्रानुसार अष्टाक्षर सहित पादत्रय का विधान है। पादचतुष्टय होने से अनुष्टुप् छन्द (श्लोक) होता है। तथाहि—गायत्री तु त्रिपदैव भवति। चतुर्भिरष्टाक्षरैः पादैरनुष्टुब्वेव स्यादिति तात्पर्यम्। देवीभागवतेऽपि त्रिपाद्गायत्री यथा—'सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्याञ्च धीमहि। बुद्धिं या नः प्रचोदयात्।' अत्रास्माकं शक्तिप्रबोधिनी टीका द्रष्टव्या—(सं०)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कौन-सा ऐसा सत्कर्म करें, जिससे वे हमारे सहायक होकर हमें सद्बुद्धि दें तथा हमारे कल्याणकारी मित्र (हितैषी) बनें ॥ ४ ॥

कस्त्वा सत्योमदानाम्मꣳहिष्ठोमत्सदन्धसः । दृढाचिदारुजेवसु ॥

हे इन्द्र ! आनन्दवर्द्धक हव्य पदार्थों में कौन-सा पदार्थ (अन्न, खीर आदि) आपको अधिक प्रिय है, जिससे आप अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं, और दृढ़तापूर्वक प्रसन्न होकर हम यजमान (भक्तों) को सुवर्णादि वसु (धन-धान्य) प्रदान करते हैं, सो बताने की कृपा करें ॥ ५ ॥

अभीषुणः सखीनामविताजरितॄणाम् । शतम्भवास्यूतिभिः ॥

हे प्रभो ! आप अपने मित्रों तथा स्तुति करनेवाले ऋत्विजों के रक्षक हैं। आप भक्तों के रक्षार्थ अनेक रूप धारण करनेवाले तथा अपने सम्मुख उपस्थित सेवकों के हितार्थ सम्यक् प्रकार से प्रयत्नशील रहते हैं। इसलिये हमारे सामने आप अपना 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' रूप दिखाने की कृपा करें ॥ ६ ॥

कयात्वन्नऽऊत्याभिप्रमन्दसेवृषन् । कयास्तोतृभ्यऽआभर ॥७॥

हे सफल मनोरथ करनेवाले इन्द्र ! आप कैसे द्रव्य पदार्थों से तृप्त होते हैं ? किस प्रकार की स्तुतिद्वारा अपने यजमानोंपर प्रसन्न होते हैं ? सो बताने की कृपा करें। हमलोग वैसा ही पदार्थ (पूजाविधान) आपकी सेवा में उपस्थित करेंगे ॥७॥

इन्द्रोविश्श्वस्यराजति । शन्नोऽअस्तु द्विपदेशञ्चतुष्पदे ॥ ८ ॥

समस्त संसार के स्वामिस्वरूप सूर्य के रूप में जो इन्द्र विराजमान हो रहे हैं, वे हमारे द्विपदों (पुत्र-पौत्रादिकों) चतुष्पदों (गवादि जानवरों) तथा हमलोगों के कल्याणस्वरूप हों अर्थात् कल्याणकारी बनें ॥ ८ ॥

शन्नोमित्रःशंवरुणःशन्नोभवत्वर्य्यमा । शन्नऽइन्द्रोबृहस्पतिःशन्नोविष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

हे प्रभो ! आप 'मित्र'[1] रूप से हमारा कल्याण करें, 'वरुण'रूपेण कल्याणकारी रहें, 'अर्यमा'[2] रूप से हमें सुख देनेवाले हों, 'इन्द्र' रूप से कल्याणकारी

---

१. मेद्यति—स्निह्यति भक्तेषु यः स मित्रः = मित्रदेवः = सूर्यदेव इति शेषः।

२ भक्तम्प्रतिइयति = गच्छति इति 'अर्यमा' = आदित्यः 'सूरसूर्याऽर्यमाऽऽदित्येति' कोशविधानात्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हों तथा बृहस्पति नामधारी 'गुरु' सर्वदा कल्याण करें। इसी प्रकार 'वामन' रूपधारी विष्णु भगवान् हमलोगों का सर्वदा सर्वत्र कल्याण करें ॥ ९ ॥

शन्नो वातः पवताᳫं शन्नस्तपतु सूर्य्यः। शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्ज्जन्योऽअभिवर्षतु ॥ १० ॥

हे देव ! आपकी कृपा से वायु हमारे लिए सुखदायक हों, सूर्य कल्याणकारी हों, और उनकी किरणें ताप-रहित होकर हमारे लिये महौषध रूप हों। मेघ भी यथासमय सुन्दर वृष्टि करें तथा अपने गर्जनों से हमारे शत्रुओं एवं कीट-पतंगों को नष्ट करके अमृतोपम जल बरसावें ॥ ११ ॥

अहानिशम्भवन्तु नः शᳫं रात्रीः प्रतिधीयताम्। शन्नऽइन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्नऽइन्द्रावरुणारातहव्या। शन्नऽइन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमासुविताय शंय्योः ॥ ११ ॥

उस यज्ञपुरुष परमात्मा की अनुकम्पा से हमारे सभी दिन कल्याणमय हों, रात भी सुखमयी बीते। इन्द्र तथा अग्निदेव भी हमारा कल्याण करें। सुवृष्टिद्वारा इन्द्र और वरुणदेव भी अधिक अन्न उपजाकर, हमारे लिये सुभिक्षप्रद एवं सुखकारी सिद्ध होवें। इसी प्रकार पूषा (सूर्य) तथा इन्द्र हमारे लिये सुखकर हों, इन्द्र तथा सोमदेव (चन्द्रमा) भी हमारे लिये विविध प्रकार के रोगों को शान्त करके स्वास्थ्यकर एवं सुख-शान्ति-प्रदायक हों ॥ ११ ॥

शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥

देदीप्यमान (निर्मल) जल हमारे अभिषेक किंवा अभीष्टस्नान के लिए सुखकर हो, पीने के लिये स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यकर हो, रोग एवं भय के नाश के लिये यह जल स्रोतःसलिल के समान नीरोगप्रद होकर सर्वदा सुख एवं शान्ति प्रदान करे। अर्थात् परमेश्वर की दया से यह जल हमारा सदा कल्याण करे ॥

स्योना पृथिवि नोभवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः ॥

हे भूमिदेवि ! दुःखदायी कण्टकों से रहित मनुष्यों के निवास योग्य एवं सब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकार की सुख-साधन-सम्पन्ना होकर चारों तरफ से प्रशस्त एवं स्थूल रूपवाली (विस्तृत) आप हमलोगों के लिये शरणदायिनी बनें ॥ १३ ॥

आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऽऊर्जेदधातन । महेरणायचक्षसे ॥१४॥

हे सलिल-समूह ! आप स्वयं सुखस्वरूप होकर, स्नान-पानादि के कारण हमलोगों को जैसे सुख प्राप्त हो, वैसा विधान करें। साथही अत्यन्त रमणीय ब्रह्म के साक्षात्कार योग्य हमें बनावें, जिससे हमलोग ऐहिक एवं पारलौकिक सुख का अनुभव कर सकें ॥ १४ ॥

योवः शिवतमोरसस्तस्यभाजयतेहनः । उशतीरिवमातरः ॥

हे जल ! आप सुख-शान्ति-प्रदायक 'रस' रूप हैं, अतः हमें उस दिव्य रस का पान करनेवाला उसी प्रकार बनावें, जिस प्रकार माता अपने पुत्रों को प्रीतियुक्त अपना स्तन-पय पिलाती हैं। अर्थात् अनिर्वचनीय ब्रह्मानन्दरूपी अमृत-रस का अधिकारी हमें बनावें ॥ १५ ॥

तस्माऽअरङ्गमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ । आपोजनयथाचनः ॥

हे जल ! आपके उस अमृतमय रस से हमें शीघ्र तृप्ति होवे, जिससे ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत् तृप्त होता रहता है। इसलिये हमलोगों के सुखोपभोग के लिये आप यहाँ ठहरें और हमें ऐसी शक्ति देवें, जिससे हम सन्तानोत्पादन में सर्वथा समर्थ बने रहें ॥ १६ ॥

द्यौःशान्तिरन्तरिक्षशान्तिः पृथिवीशान्तिरापःशान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयःशान्तिर्विश्वेदेवाःशान्तिर्ब्रह्मशान्तिःसर्वंशान्तिःशान्तिरेवशान्तिःसामाशान्तिरेधि ॥ १७ ॥

हे परमात्मन् ! इस संसार में हमें सब प्रकार की शान्ति प्राप्त हो। अर्थात् जो शान्ति द्युलोक में, अन्तरिक्ष में, पृथिवी में, जल में, ओषधियों एवं वनस्पतियों में विराजती है, वह हमलोगों में भी रहे। जो शान्ति सब देवताओं में, परब्रह्म परमात्मा में है, वह हममें भी होवे। जो समस्त संसार में स्वभावतः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शान्ति रहती है, वही शान्ति हमलोगों में भी आपकी कृपा से सर्वदा बनी रहे—यही प्रार्थना है ॥ १७ ॥

दृते॒दृᳪ॑हं॒मामि॒त्रस्य॑मा॒चक्षु॑षा॒सर्व्वा॑णिभू॒तानि॒समी॑क्षन्ताम् । मि॒त्र-स्या॒हञ्चक्षु॑षा॒सर्व्वा॑णिभू॒तानि॒समी॑क्षे । मि॒त्रस्य॒चक्षु॑षा॒समी॑क्षामहे ॥ १८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जरा-रोग–ग्रसित शरीर होनेपर भी मुझे आप सुदृढ़ रखें, कर्म की त्रुटि रहनेपर भी मैं निर्दोष कर्म करूँ तथा अभिषेक कर्म में भी मैं सुदृढ़ रहूँ—ऐसी आप कृपा करें । मुझे सभी लोग मित्र की दृष्टि से देखें और मैं भी सबको मित्र की दृष्टि से देखा करूँ; क्योंकि मित्र की चक्षु शान्त होती है । सुतराम् मित्र न किसी को मारता है, न कोई मित्र को ही मारता है । अपितु कोई आपस में एक दूसरे का अहित भी नहीं चाहता । इसलिये हम सबको मित्र-दृष्टि से देखा करें । अर्थात् मैं सब प्राणियों का प्रिय बनूँ—यही अभिलाषा है ॥ १८ ॥

दृते॒दृᳪ॑हं॒मा ज्योक्ते॑स॒न्दृशि॑ जीव्यास॒म् । ज्योक्ते॑स॒न्दृशि॑जीव्या-सम् ॥ १९ ॥

हे परम प्रभो ! आप मुझे सुदृढ़ करें, आपकी दृष्टि में आपके दर्शनार्थ मैं दीर्घकाल तक जीता रहूँ । इस मंत्र में 'जीव्यासम्' पद की आवृत्ति आदर-प्रदर्शन के लिये है ॥ १९ ॥

नम॑स्ते॒ हर॑से॒शो॒चि॒षे॒नम॑स्तेऽअस्त्व॒र्चिषे॑ । अ॒न्न्याँस्ते॑ऽअ॒स्मत्त॑-पन्तुहे॒तय॑ः पाव॒कोऽअ॒स्मभ्य॑ᳪशि॒वो भ॑व ॥ २० ॥

हे अग्निदेव ! सब रसों को हरनेवाली आपकी तेजोमयी ज्वाला को नमस्कार है । सब पदार्थों को प्रकाशित करनेवाले आपके तेज को बार-बार प्रणाम है । हे अग्ने ! आपका जलता हुआ तेज हमारे वैरियों को जलावे तथा हमारे लिये वह शीतल होकर कल्याणकारी बने ॥ २० ॥

नम॑स्तेऽ अस्तुवि॒द्यु॒ते॒नम॑स्तेस्तनयि॒त्नवे॑ । नम॑स्तेभगवन्नस्तु॒य-त॒स्स्व॒ः स॒मीह॑से ॥ २१ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे भगवन् ! इन्द्रदेव !! आपकी विद्युत् शक्ति को प्रणाम है, आपके मेघगर्जन को प्राणाम है। आप सर्वदा स्वर्ग-सुख देते रहते हैं, इस कारण आपको नमस्कार है। आपके अनेक रूप हैं, अतः सब प्राणियों के लिये सुख-सुविधा की चेष्टा रखनेवाले आप को वार-वार प्रणाम है ॥ २१ ॥

यतो॑यतः स॒मीह॑से ततो॑ नो॒ऽअभ॑यङ्कुरु । शन्नः॑ कुरु प्र॒जाभ्यो ऽभ॑यन्नः प॒शुभ्यः॑ ॥ २२ ॥

हे प्रभो ! जिस-जिस दुराचार से हमारा अपकार होता है अथवा हमारा अनिष्ट होने को होता है, उस कर्म से हमलोगों को आप निर्भय कर दें ! हमारी प्रजाओं को सुख देकर अभय कर दें तथा हमारे पशुओं को भी सुखी कीजिये। अर्थात् हम तथा हमारी सारी प्रजा एवं पशुगण भी निर्भय होकर आपके दिये हुए सुख को भोगने में समर्थ हों ॥ २२ ॥

सु॒मि॒त्रि॒या न॒ऽआप॒ऽओष॑धयः सन्तु दु॒र्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु-यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यञ्च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २३ ॥

हे परमात्मन् ! जल एवं वनौषधि हमारे लिये सुखप्रद हों। साथही जो हमसे द्वेष करता है, किंवा जिससे हम द्वेष रखते हैं, (यद्यपि हम तो किसी से द्वेष रखते नहीं, पर हमसे जो अकारण द्वेष रखता है), उन दोनों प्रकार के उभयात्मक शत्रुओं के लिये जल एवं ओषधियाँ दुःख देनेवाली हों ॥ २३ ॥

तच्चक्षु॑र्दे॒वहि॑तम्पु॒रस्ता॑च्छु॒क्रमु॒च्चर॑त् । पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तं जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तꣳ शृणु॑याम श॒रदः॑ श॒तम्प्रब्र॑वाम श॒रदः॑ श॒तमदी॑नाः स्याम श॒रदः॑ श॒तम्भूय॑श्च श॒रदः॑ श॒तात् ॥ २४ ॥

इति रुद्राष्टाध्याय्यां शान्तिपाठः ॥ ६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपर्युक्त मंत्रों द्वारा जो अभिनन्दित है, किंवा देवताओं द्वारा जो प्रतिष्ठित है, जो समस्त संसार का नेत्र-स्वरूप है, रजस्तमः से रहित शुद्ध शुक्त रूप जो सूर्य पूर्व दिशा में प्रतिदिन उदित होता है, उस दिव्य तेजोमय आदित्य भगवान् की कृपा से सौ वर्ष तक हम देखें अर्थात् सैकड़ों वर्ष तक हमारी नेत्रज्योति कम न हो। सौ वर्ष तक हम स्वतंत्र जीवन-यापन करें, सौ वर्ष तक हम स्पष्टरूपेण शब्द श्रवण करें, सौ वर्ष तक हमारी इन्द्रियों में विकार न हो, किंवा हमारा वीर्य स्खलित न हो। अर्थात् हम सैकड़ों वर्षतक ब्रह्मचर्य पूर्वक जीते रहें। सौ वर्ष तक हम किसी के सम्मुख दीनता न प्रकट करें। यहाँ तक कि सैकड़ों वर्ष से ऊपर मनुष्य की पूर्णायु पर्यन्त १२० वर्ष तक देखें, सुनें और स्वस्थ-सुखी होकर जीवित रहें ॥ २४ ॥

नोट—इस मंत्र को सूर्योपस्थान के समय तथा विवाह–यज्ञादि में सूर्य-दर्शन करते समय अवश्य पढ़ना चाहिये।

इति श्री गार्ग्यमुनि द्विजेन्द्रकवि कृत 'रुद्रप्रिया' भाषाव्याख्या सहित
रुद्राष्टाध्यायीका शान्तिपाठ समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(२) अथ स्वस्तिमन्त्रपाठः ।

हरिः ॐ । स्वस्तिनऽइन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः । स्वस्तिनस्ताक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु ॥१॥

अतुल कीर्त्ति-सम्पन्न यज्ञप्रिय इन्द्रदेव हमारे लिये कल्याणकारी हों, समस्त विश्व अर्थात् वैदिक विज्ञान को जाननेवाले एवं 'परिपोषक 'पूषा' भगवान् सर्वज्ञ 'सूर्य' देव हमारे लिये स्वस्ति (मङ्गल) का विधान करें। अविहत गतिशील 'ताक्ष्र्य' भगवान् 'शेष' हमलोगों का नित्य कल्याण करें, देवताओं के पति 'बृहस्पति' (गुरु) देव हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥ १ ॥

ॐ पयः पृथिव्याम्पयऽ ओषधीषु पयो दिव्युन्तरिक्षेपयोधाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ २ ॥

हे अग्निदेव ! पृथिवी हमारे लिये 'रस' धारण करनेवाली बने, वनस्पतियों में अमृतरस वास करें, स्वर्गलोक एवं अन्तरिक्ष लोक भी हमारे लिये सुधा-सिंचन करें तथा दिशा-विदिशा सर्वत्र हमारे वास्ते रसमय हो। इस प्रकार पृथ्वी आदि सभी सर्वदा हमारा कल्याण करें ॥ २ ॥

ॐ विष्णोर्रराटमसिविष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसिविष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसिविष्णवे त्वा ॥ ३ ॥

प्रसंग—यज्ञमण्डप के मुख्य द्वारपर विष्णु की कल्पना करते हुए यहाँ यज्ञपुरुष का रूपक सजाया है। अतः दोमों वंशस्तम्भों के ऊपर जो अर्द्धवृत्ताकार किंवा तिरछे रूप से तोरण सजाया जाता है, उसे ही यहाँ 'रराटी' या 'वंशचीर' कहा गया है, जो द्वार का सिर-स्वरूप है। तदनुसार उसके साधनों को इस मंत्र में मूर्तिमान् 'विष्णु' का रूप दिया गया है। देखिये—

हे वंशचीर ! तुम यज्ञपुरुष के मण्डप का मुखद्वार हो, ये दोनों बाँस उसके दोनों ओठों के समान हैं तथा तिरछे वृत्ताकार (इस बाँस के वाता का) बना हुआ तुम्हारा सिर शोभा दे रहा हैं। हे लस्मूजनि ! तुम इस यज्ञमण्डप के साधन स्वरूप छोटी-बड़ी सूची (सूई या सूआ) हो, हे रज्जुग्रंथ—तुम विष्णु भगवान् के इस होम-यज्ञ का ध्वज-स्वरूप हो। हे प्राग्वंश ! तुम इस वैष्णव यज्ञ-मण्डप के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्तम्भ एवं आधार स्वरूप हो, इसलिये विष्णु भगवान् की तृप्ति के लिये यहां मैं तुम्हें स्पर्श करता हूँ ॥ ३ ॥

ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवताऽऽमरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! यहाँ मैं अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, वसुदेव (आठो वसु), रुद्रदेव, आदित्य, मरुत्, विश्वेदेव, बृहस्पति, इन्द्र तथा वरुण आदि द्वादश देवताओं का स्मरण करके अपने इष्ट-देव का स्थापन करता हूँ ॥ ४ ॥

नोट—इस मंत्रद्वारा किसी आचार्य के मत से इष्टिका (ईंट) की स्तुति की गयी है । उस पक्ष में हे 'इष्टि'क ! संबोधिन करते हुए मनुष्य रचना करे ।

[1]सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥ ५ ॥

'सद्योजात' (शिवजी के पंचमुखों में से एक मुख का नाम है) नाम के हे महादेव ! मैं आप की शरण में हूं। इसलिये सद्योजात स्वरूप स्वयम्भू भगवान् के लिये मेरा वार-बार प्रणाम हो । हे रुद्रदेव ! मुझे आप संसार में वार-बार जन्म लेने की प्रेरणा न दें; किन्तु अब जन्मान्तर में मैं कभी भव (संसार) में न आऊँ–ऐसी कृपा करें । अर्थात् तत्त्वोपदेश द्वारा मुझे आवागमन से रहित करें । क्योंकि आप ही तारक मंत्रोपदेश द्वारा सब प्राणियों के उद्धार करनेवाले हैं । ऐसे पश्चिमाभिमुख 'सद्योजात' महाप्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ ६ ॥

---

१. बुद्धिमान् पुरुष को शीघ्र सद्ज्ञान प्राप्ति के लिये पंचमुख महादेव की उपासना करनी चाहिये । यहां से पश्चिम उत्तर, दक्षिण, पूर्व एवं ऊर्ध्वमुखी शिव-स्तुति के मंत्र हैं । मेरे विचार में पूर्वादि क्रम ही ठीक होता है—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम उत्तर तथा ऊपर ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उत्तराभिमुख 'वामदेव' महादेव को प्रणाम है। उन्हींके विग्रह-स्वरूप ज्येष्ठादि नामधारी शिव भी हैं, जो महादेव की नवपीठाधिष्ठित शक्तियों के स्वामी हैं। उनके नाम हैं—वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र, कालकल, विकरण, बलविकरण, बलप्रमथन तथा मनोन्मन। इन नवों देवताओं को प्रणाम है ॥ ६ ॥

ॐ अघोरेभ्योऽथघोरेभ्योघोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्योनमस्तेऽअस्तुरुद्ररूपेभ्यः ॥ ७ ॥

दक्षिणाभिमुख सत्वगुणयुक्त 'अघोर' नामवाले रुद्रदेव को प्रणाम हो; इसी प्रकार राजस गुणयुक्त 'घोर' नामक रुद्र तथा तामस गुणयुक्त 'घोरतर' नामक रुद्र को प्रणाम हो। हे शर्व! (परमेश्वर) उपर्युक्त तीनों भेदवाले आपको अर्थात् त्रिविध रुद्रदेव को सर्वत्र सर्वदा सर्वतोभावेन वार-वार प्रणाम हो ॥ ७ ॥

ॐ [1]तत्पुरुषायविद्महेमहादेवायधीमहि। तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् ॥

हमलोग उस पूर्वाभिमुख महादेव (रुद्र) को गुरुमुख एवं शास्त्रद्वारा जानते हैं। ऐसा जानकर ही रुद्र महादेव को हमलोग ध्यान करते हैं। इसलिये वह रुद्र भगवान् हमको ध्यान-योग में लगावे। अर्थात् उस परमात्मा के ध्यान के लिये हमें प्रेरित करें ॥ ८ ॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्माशिवोमेऽअस्तुसदाशिवोऽहम् ॥ ९ ॥

उस ऊर्ध्वमुखी रुद्रनारायण को प्रणाम है, जो वेद, शास्त्र एवं तन्त्र-मन्त्र के नियामक हैं, जो चौसठ कलायुक्त विद्या के ईश्वर 'ईशान' नाम से प्रतिष्ठित हैं; जो सब प्राणियों के प्रभु तथा ब्रह्म (वेद) के अधिपति एवं हिरण्यगर्भ के स्वामी है—ऐसे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप परमात्मा शिव हमारे लिये शिवस्वरूप (कल्याणकारी) हों अथवा उनकी कृपा से मैं भी सदाशिव स्वरूप "शिवोऽहम्" हो जाऊं ॥ ९ ॥

ॐ [2]शिवोनामासिस्वधितिस्तेपितानमस्तेऽअस्तुमामाहिꣳसीः ।

---

१. यह मन्त्र रुद्रगायत्री है। इसलिये इसके पूर्व प्रणव 'ॐ' लग जाना चाहिए। इसमें भी २४ वर्ण हैं।

२. देखिये छठाँ अध्याय का अन्तिम मन्त्र (रुद्राष्टाध्यायी)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निवर्त्तयाम्म्यायुषेन्नाद्यायप्रजननायरायस्पोषायसुप्रजास्त्वायसुवीर्याय ॥

हे वपनशास्त्र, क्षुर ! तुम शान्तरूप हो, तुम्हारा पिता वज्र है अर्थात् तुम लौह की सन्तान हो। अतः तुम्हें प्रणाम है। मुझे किसी प्रकार की क्षति न पहुंचाना। हे यजमान ! मैं इस क्रिया के फलस्वरूप तुम्हारे जीवन, धन-धान्य सन्तान एवं सुयश-गौरव के लिये ही तुम्हारा शिरोवपन (मुण्डन) कर रहा हूँ ॥ १० ॥

ॐ विश्श्वानिदेवसवितर्दुरितानिपरासुव । यद्भद्रन्तन्नऽआसुव ॥

अन्तिम प्रार्थना करते समय यजमान कहता है—'हे सविता (सूर्य) देवता ! इस संसार में हमारे सभी पापों को आप दूर करें। साथही जो-जो कल्याण-कारी पदार्थ हैं, वे सभी हमें प्राप्त हों—ऐसी कृपा करिये ॥ ११ ॥

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्व्विश्श्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व्वꣳशान्तिः शान्तिरेवशान्तिः सामाशान्तिरेधि ॥ १२ ॥

हे परमात्मन् ! इस संसार में हमें सब प्रकार की शान्ति प्राप्त हो। अर्थात् जो शान्ति द्युलोक में, आन्तरिक्ष में, पृथ्वी में, जल में, औषधियों, एवं वनस्पतियों में विराजती है, वह हम लोगों में भी रहे। जो शान्ति सब देवताओं में—परब्रह्म परमात्मा में है, वह हमें भी होवे। जो समस्त संसार में स्वभावतः शान्ति रहती है, वही शान्ति हमलोगों में भी आपकी कृपा से सर्वदा बनी रहे—यही प्रार्थना है ॥ १२ ॥

ॐ सर्व्वेषां वाऽ एष व्वेदानाꣳरसो यस्सामसर्व्वेषामेवैनमेतद्वेदानाꣳरसेनाऽभिषिञ्चति ॥ १३ ॥

सब वेदों का तत्त्वस्वरूप रस जो सामवेद अथवा भगवान् 'साम'[1] (विष्णु-या कृष्ण) हैं, उसी रस से वे सभी वेदों को सींचते हैं ॥ १३ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु सर्वारिष्टशान्ति-

१. 'वेदानां सामवेदोऽस्मि ।' इति गीतोक्तेः ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

र्भवतु । अनेन रुद्राभिषेककर्मणा कृतेन श्रीभवानीशङ्करमहारुद्रः प्रीयतां न मम ॐ सदाशिवार्पणमस्तु ॥ १४ ॥

सब प्रकार से शान्ति हो। समस्त अरिष्टों (पापजनित संकटों) की शान्ति हो। इस रुद्राभिषेक कर्मद्वारा भगवान् भवानी शङ्कर महारुद्र प्रभु प्रसन्न होवें; क्योंकि मेरा इसमें कुछ नहीं लगा है, सब कुछ आशुतोष भगवान् शङ्कर का ही है। इसलिये यह उन्हीं सदाशिव भगवान् को समर्पित हो॥ १४॥

आशीर्वादात्मक दोहे

राम[३]-नेत्र[२]-नभ[०]-नयन[२] शुभ; विक्रमाब्द शुचि मास ।
त्रयोदशी गुरुवार को; पूर्ण किया अभिलाष ॥ १ ॥

श्रुति-सम्मत, सज्जन-सुखद; रुद्र-प्रियंकर मान ।
शिव-अभिषेक-विधायक; हो 'द्विजेन्द्र'-प्रिय जान ॥ २ ॥

रुद्रदेव–कृपया रची, व्याख्या 'रुद्रप्रिया'ऽऽख्य ।
'रुद्राष्टाध्यायी' पढ़ें; वैदिक मंत्र सुभाष्य ॥ ३ ॥

सरस, सरल भाषा-भणित, शान्ति–प्रार्थना–युक्त ।
मनोयोग से जो पढ़े; सो 'द्विजेन्द्र' भव-मुक्त ॥ ४ ॥

इति श्रीगार्ग्यमुनि 'द्विजेन्द्र' कविकृत 'रुद्रप्रिया' व्याख्या सहित

शान्ति-पाठ समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(३) अथ रुद्राभिषेक-माहात्म्यम्

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि रुद्रसेचन-कर्मणः ।
महिमानं मया प्रोक्तं सनकाय शुचिव्रते ! ॥ १ ॥

श्री शङ्करजी बोले—हे देवि ! हे पवित्र व्रतवाली पार्वति !! रुद्राभिषेककी महिमा—जो मैंने सनक-सनन्दनमुनि को सुनायी है—-वही यहाँ तुमसे मैं अभी कह रहा हूँ ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच

कदा स मुनिशार्दूलः प्राप्तस्त्वां केन हेतुना ।
कथं रुद्राभिषेकस्य महिमा वर्णितो त्वया ॥ २ ॥

श्रीदेवी ने कहा—हे भगवन्! वह मुनिवर 'सनक' कब किस कारण से आपको मिले ? और आपने उनसे रुद्राभिषेक की महिमा कैसी बतायी ? सो कहिये ॥२॥

श्रीशिव उवाच

एकदा बालरूपः स विचरन् पृथिवीतले ।
ददर्श क्लिष्टकर्माणं लोकं दुःखमवापह ॥ ३ ॥
तद्दुःखदुःखितो नूनं कैलासं गतवान् द्रुतम् ।
लोकानां दुःखसन्दोहं कथयामास माम्प्रति ॥ ४ ॥

श्रीशिवजी ने तब कहा—एक समय की बात है—बाल रूपधारी उस 'सनक' कुमारमुनि ने भूतल पर भ्रमण करते हुए, एकवार सभी लोगों को क्लेश में पड़े हुए देखा । उन्हें देखकर वे स्वयं भी अत्यन्त दुःखित हुए । उनके दुःख से दुःखित[1] मुनि शीघ्र ही कैलास पर्वतपर गये और तत्कालीन लोगोंके कष्ट को उन्होंने मुझसे कहा ॥ ३-४ ॥

---

१. पर–दुःख से दुःखित होकर अकारण स्नेह करना सन्त-महापुरुषों का स्वाभाविक गुण है । क्योंकि—'सतां हि चान्तःकरणं प्रमाणम् ।' कहा गया है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पप्रच्छ च लघूपायं दुःखनाशाय देहिनाम् ।
मया तत्कथितं भद्रे ! तच्छृणुष्वावधारय ॥ ५ ॥

साथही उन प्राणियों की कष्ट-निवृत्तिके लिये कोई छोटा-सा उपाय भी पूछा । तब उस समय मैंने जो उपाय बताया, उसे हे भद्रे ! सावधान होकर सुनो और उसको अपने मन में धारण करो ॥ ५ ॥

मुनिसत्तम ! ते दुःखं दृष्ट्वा मे मानसं ध्रुवम् ।
उपकाराय लोकानां शोचते किञ्चिदुत्तमम् ॥ ६ ॥

हे मुनिवर ! तुम्हारे कष्ट को देखकर मेरा मन निश्चय ही संसार के कल्याणार्थ कोई उत्तम उपाय सोच रहा है । अर्थात् तुम्हारी इस परोपकार-परायतापर विचार करके मैं अवश्य ही कोई उपाय कह रहा हूँ ॥ ६ ॥

मुहुर्मुहुश्चिन्त्यमानमुपायमेकमेव हि ।
रुद्राभिषेकादितरं नोत्प्रेक्ष्य साम्प्रतं मुने ! ॥ ७ ॥

हे बालमुने ! वार-वार विचार करनेपर भी मुझे केवल एक ही उपाय दृष्टिगोचर होरहा है । वह है—एकमात्र इस समय 'रुद्राभिषेक' ही । इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं सूझता ॥ ७ ॥

सर्वकर्माणि सन्त्यज्य सुशान्तमनसो यदा ।
रुद्राभिषेकं कुर्वन्ति दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम् ॥ ८ ॥

हे देवि ! सब कामों को छोड़कर शान्त मन से यदि 'रुद्राभिषेक' कर्म किया जाय, तो अवश्य ही सब दुःखों का नाश हो जाय ॥ ८ ॥

जलेन वृष्टिमाप्नोति व्याधिशान्त्यै कुशोदकैः ।
दध्ना च पशुकामाय श्रिया इक्षुरसेन च ॥ ९ ॥
मध्वाज्येन धनार्थी स्यान्मुमुक्षुस्तीर्थवारिणा ।
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति पयसा चाभिषेचनात् ॥ १० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे देवि ! वस्तु–भेद से फल–भेद इस प्रकार सुनो—जल से रुद्राभिषेक करने पर सुवृष्टि होती है, कुश सहित जलाभिषेक से रोग शान्त होता है। पशु-लाभ की कामना से दधिद्वारा अभिषेक करे और लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये इक्षुरस से अभिषेक करना चाहिये। इसी प्रकार धनार्थी पुरुष मधु और घृत से तथा मुमुक्षु पुरुष तीर्थ के जल से रुद्राभिषेक करे। पुत्र की इच्छावाले यजमान को चाहिये कि वह दुग्ध-धारा से शंकरजी का अभिषेक करे ॥९–१०॥

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याऽङ्गना।
सद्यः पुत्रमवाप्नोति पयसा चाभिषेचनात् ॥११॥

संसार में तीन प्रकार की वन्ध्या स्त्रियाँ होती हैं। वन्ध्या,[1] काकवन्ध्या[2] और मृतवत्सा[3]। इन तीनों को भी दुग्धधार से रुद्राभिषेक करने पर शीघ्र पुत्र प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

श्रीरुद्रस्य प्रसादेन बद्धो मुच्येत वन्धनात्।
भीतो भयात्प्रमुच्येत वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

जेल में गया मनुष्य यदि रुद्राभिषेक करावे तो रुद्रप्रभु की कृपा से वह वन्धन से छूट जाता है। भयभीत प्राणी निर्भय हो जाता है तथा वाँझ स्त्री को भी पुत्र हो जाता है ॥ १२ ॥

मूर्खो वाचामधीशः स्याद् दरिद्रो धनिनां वरः।
मूको वक्ता भवेत् पङ्गुर्गिरिं लङ्घयते द्रुतम् ॥ १३ ॥

रुद्राभिषेक के प्रभाव से मूर्ख भी विद्वानों में श्रेष्ठ तथा निर्धन भी धनाढ्यों में श्रेष्ठ हो जाता है। यहाँ तक कि गूंगा आदमी भी वक्ता एवं लँगड़ा पुरुष भी पर्वत के शिखरपर शीघ्र चढ़ जाता है ॥ १३ ॥

---

१. मासिक धर्म शुद्ध न होने अथवा किसी व्याधि के कारण भी स्त्री वंध्या कहलाती है, अथवा पूर्वजन्म के दुर्दैवविवश भी स्त्री बन्ध्या होती है !

२. एक सन्तान होकर रुक जाने पर स्त्री 'काकवन्ध्या' कही जाती है।

३. जिसके बच्चे हो-होकर मरते जाते हैं, उसे 'मृतवत्सा' वन्ध्या कहते हैं !

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनसा कर्मणा वाचा शुचिः सङ्गविवर्जितः ।
कुर्याद्रुद्राभिषेकञ्च प्रीतये शूलपाणिनः ॥ १४ ॥

इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह सर्वदा निःसंग हो, पवित्र भाव से त्रिशूलधारी भगवान् शंकर (रुद्रदेव) की प्रसन्नताके लिये रुद्राभिषेक अवश्य किया करें ॥ १४ ॥

सर्वान् कामानवाप्नोति लभते परमां गतिम् ।
नन्दते च कुलं पुंसां श्रीमच्छम्भु-प्रसादतः ॥ १५ ॥

क्योंकि रुद्राभिषेक करनेवाला पुरुष अपने सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है । अन्त में परम गति (मुक्ति) प्राप्त करता है तथा शिवजी की कृपा से वह मानव-समाज में पूज्य (आदरणीय) हो जाता है ॥ १५ ॥

रुद्राभिषेक-कर्त्तॄणां विप्राणां प्रीतिहेतवे ।
गो-भू-हिरण्य-वासांसि सशक्त्यं[१] प्रतिपादयेत् ॥ १६ ॥

हे देवि ! रुद्राभिषेक करनेवाले ब्राह्मणों की प्रसन्नता (सन्तुष्टि) के निमित्त यथाशक्ति गोदान, भूमिदान, सुवर्णदान एवं वस्त्रदान अवश्य करना चाहिये ॥

वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं कर्मण्यस्मिन् द्विजातिभिः ।
दातव्यं द्विजवर्येभ्यो गृहणीयादाशिषः शुभाः ॥ १७ ॥

हे देवि ! द्विजातिमात्रको इस कृत्य में कभी धन की कृपणता नहीं करनी चाहिये । अर्थात् अपनी योग्यतानुसार धन व्यय करने में मुक्त-हस्त रहना चाहिये अतः विद्वान् ब्राह्मणों को भूरि दक्षिणा देकर उनसे शुभाशीर्वाद ग्रहण करना चाहिये ॥ १७ ॥

एवं कृते मनुष्याणां वाञ्छासिद्धिः सुनिश्चिता ।
मोदन्ते बन्धुभिर्लोके लभन्ते परमं पदम् ॥ १८ ॥

---

१. 'यथाशक्ति प्रदापयेत्' इति पाठान्तरम् ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऐसा करने पर मनुष्यों की सभी कामनाएँ पूरी होती हैं—यह निश्चित है। साथही संसार में रुद्राभिषेक करनेवाले यजमान अपने बन्धुओं में सर्वदा आनन्दित रहकर अन्त में परम पद (मोक्ष) को प्राप्त कर लेते हैं ॥ १८ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

इति श्रीबलियामण्डलान्तर्गत–'दुबहर'–ग्रामनिवासिपाण्डेयोपाह्व-
पाण्डितठाकुरप्रसादशर्म-सूनुपण्डितश्रीसरयूप्रसादशास्त्रि-
'द्विजेन्द्र'–गार्ग्यमुनिविरचित 'रुद्रप्रिया' व्याख्या-
विभूषिता रुद्राष्टाध्यायी समाप्ता ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सचित्र—

सामवेदीय-रुद्रजप-विधिः

आचार्य श्री ऋषिशंकर अग्निहोत्री श्रीमाली

इस पुस्तक में सामवेदीय रुद्री के मन्त्र संगृहीत हैं। अनेक ग्रन्थों का अवलोकन-आलोडन करके प्रत्येक मन्त्र का इस प्रकार प्रामाणिक हिन्दी भाष्य दिया गया है कि मन्त्र का यथार्थ भाव सुस्पष्ट हो जाता है। सामवेद से प्रेम रखनेवाले किन्तु अँगरेजी का विशेष ज्ञान रखनेवाले सज्जनों के लिये अँगरेजी में भी प्रति मन्त्र का व्यवस्थित अनुवाद मन्त्रों के साथ रखा गया है। गान तथा पद पाठ भी प्रयत्नपूर्वक परम शुद्ध रूप में मन्त्रों के साथ दिए गए हैं।

भूमिका के अन्तर्गत सामवेदीय रुद्री से संबन्धित अधिकतम उपयोगी सामग्री—पारिभाषिक प्रक्रिया-बोधक वैदिक शब्दों के अर्थ, स्वरबोधक तालिका, स्वरों का रहस्य तथा प्रयोगविधि, रुद्राध्याय पाठ करने की विधि, सचित्र स्वरसंख्या तथा हाथों में अंगुलि-निवेश, रुद्रस्वाहाकार, रुद्रपीठ-वर्णन आदि तथा ग्रन्थान्त में आरती, मन्त्रपुष्पाञ्जलि, प्रार्थना, शिवमानसपूजा आदि सामग्री दी गई है।

इतनी विशद सामग्री के साथ सामवेदीय रुद्री का कोई दूसरा संस्करण अब तक नहीं छपा था। सामवेदीय रुद्री से अनुराग रखने वाले तथा उसका अध्ययन-पाठ आदि करनेवालों के लिये इससे उत्तम कोई भी दूसरा संस्करण प्राप्य नहीं है।

ध्यानानुसार अर्धनारीश्वर के मनोरम चित्र से युक्त आवरण, और छपाई-गेटअप-कागज आदि सभी सर्वोत्तम। मूल्य ४—००

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी—१

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection